॥ ॐ तत्सत् ॥

॥ सरल भगवद्गीता ॥

जिसे

बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री

ने

सिद्धेश्वर शर्मा के प्रबंध से
बनारस।
सिद्धेश्वर स्टीम प्रेस मे छपाया।
१९०८ ई०

सरल भगवद्गीता

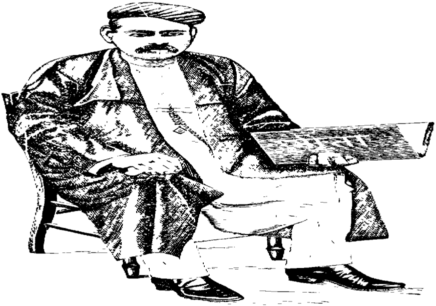
॥ जिसमें ॥

आनन्द कन्द श्री कृष्ण चन्द्र परब्रह्म स्वरूप ने निजभक्त अर्जुन से आत्मस्वरूप बोधार्थ
परम ज्ञान वर्णन किया है।

॥ उसीको ॥

मुसलमल हिन्दी सरल बोल चालमें बाबू अयोध्याप्रसाद वल्द बाबू गोपाललाल भंडारी खत्री
जमींदार व सौदागर मुजफ्फरपुर प्रकाश कर्ता साले गुलजारबहार व ओहर गीता रसिक विनय ने
सिद्धेश्वर स्टीम प्रेस में छपवाया।

सन् १९०८।



बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री

Printed by S. Sharma at Sudhakar Steam Press,
Benares City

प्रस्तावना ।

विदित होकि मेरे महा पूज्य पिताजी बाबू गोपाललाल ८५ बर्ष की अवस्था में ता०१६फरवरी सन् १८९६ मुताबिक १७ फागुन सन्१३०३ को स्वर्ग बासी हुए;कुछ दिन पहिले एक जिल्द भगवद्गीता तर्जुमा मुंशी श्यामसुन्दरलाल वचश्मताली मशरफी खास हमको देकर कहा कि भगवद्गीता देखा करो; तबसे मुझको श्रद्धा गीता पढ़ने की हुई संस्कृत जुबान नहीं जानने की वजह से दिलमें यह ख्याल हुआ के अगर भगवद्गीता उर्दूमें मुसल्सल तर्जुमा होजाय तो जो हमारे ऐसे संस्कृत नहीं जानते हैं उनके बड़े काम का होगा । उर्दू तर्जुमा करना शुरू किया और हिन्दी बोल चाल में भी लिखने के लिए श्री शिव शंकर शर्म्मा ब्राह्मण मुंगेर बासी से प्रार्थना की, शर्म्माजी घर से विरक्त होकर हमारे यहां कुछ दिन ठहरेथे,

बीमारी में दर्दमंदी से हमारी बीमारदारी की खिदमत की जिसके हम रिनियां हैं न मालूम अब वह कहां हैं उर्दू व हिन्दी तर्जुमा करने में बहुत मदद व सलाह शर्मा जी से मिलती रही उर्दू तर्जुमा तो मुरत्तब होकर मिसेज़ एनी बीसेंट साहिबा को जो गीता का प्रचार और मुल्कों में कर रही हैं बनारस में हिन्दू कालेज खोला है, देखला कर उन का भी सार्टिफिकेट हासिल करके ५०० जिल्दें मौसूमें जौहर गीता आगरे से सन १६६८ में छपवाकर मंगाया जो हाथों हाथ बट गया है मगर हिन्दी तर्जुमा नामुकम्मिल पड़ा रहा जिस्को हमने अब मुरत्तब करके छपवाया है हिन्दी तर्जुमा मुसल्सल बोल चाल में ऐसा उम्दा हुआ है कि जो कोई एक बार देखेंगे तो बिल्कुल पढ़े नहीं छोडेंगे। प्रति दिन पाठ करने योग्य हुआ है ऐसा तर्जुमा मुसल्सल अब तक कोई नहीं छपा होगा इस्का नम्बर

असल पुस्तक के श्लोक का नम्बर है जो साहेब संस्कृत से मीलान मुकाबिला किया चाहें मीलान मुकाबला कर ले सकते हैं इस में जो कुछ भूल चूक हुआ हो सज्जन जनोंसे आग्रह है कि सुधार देंगे हम को आर्शीवाद देंगे जिस से मेरी बिगड़ी बन जाय आकबत बखैर हो जाय ॥ १ ॥

अयोध्याप्रसाद उपनाम रसिकलाल भंडारी खत्री,
मुजफ्फरपुर।

॥ खुलासा ॥

राजापांडुव राजाधृतराष्ट्र वैमात्रिक भाई थे। पांडूके पांचपुत्र युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन रानी कुन्ती से—नकुल, सहदेव—रानी माद्री से व राजा धृतराष्ट्र के दुर्योधन वगैरः सौ बेटेथे। राजा धृतराष्ट्र अंधेथे उनका बडा बेटा राज करताथा, हस्तिनापूर का राज दोनों भाइयों में बटा हुआथा, राजा दुर्योधनने राजा युधिष्ठिरसे जूए में उनके हिस्सेका राज जीत लिया इसी बिरोधसे कुरुक्षेत्र में लड़ाईहुई श्रीकृष्ण भगवान अर्जुन के मदद गार थे—श्रीकृष्ण भगवानने अर्जुनसे जो वार्ता रंग भूमि में की उस को वेदव्यास जी ने प्रकाश किया जिस का नाम भगवद्गीता है।

श्रीमान पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र मुरादाबादी की

राय ।

मैंने श्रीमान बाबू अयोध्या प्रसादजी महोदय के किये श्रीमद्भगवद्गीता के अनुवाद को अवलोकन किया। यह अनुवाद सरल और हिन्दीभाषा जानने वालों के लिये उपयोगी है. जहांतक मेरा विचार है इस अनुवाद से पाठक वर्ग लाभ उठा सकते हैं मैं बाबूसाहब को इस परिश्रम के निमित्त धन्यवाद देता हूं जो उन्होंने इस परम रहस्य को सर्वसाधारण के समझने योग्य कर दिया।

श्री ज्वालाप्रसाद मिश्र,
(मुरादाबादी) मुजफ्फरपुर।

—*—

राय ।

श्रीयुत बाबू अयोध्या प्रसादजी ने भगवद्गीता का भाषा अनुवाद बहुत परिश्रम से किया। पाठकगणों को पाठ करने में इससे सुगमता होगी ये अमृत तुल्य पाठ से पवित्र है इससे धन्यवाद देते हैं।

श्रीसत्यदेव मिश्र,
मौजे डुमरी—जिला छपरा।

॥ सरल भगवद्गीता ॥

॥ पहला अध्याय बिषाद बर्णन ॥

(१) राजा धृतराष्ट्र ने अपने सारथी संजय से पूंछा कि मेरे पुत्र और पांडु के पुत्रजो युद्ध की इच्छा से धर्म भूमि कुरु क्षेत्र में इकठे हुये सो क्या करने लगे।

(२) तब संजय ने कहा कि राजा दुर्योधन ने पांडवों की सेना की सजावट को देख कर अपने गुरु द्रोणाचार्य से कहा।

(३) कि हे आचार्य देखिये तो द्रुपद राजा के पुत्र धृष्टद्युम्न ने जो आपका शिष्य है पांडवों की सेना को क्याही अच्छा सजा है ।

(४) इस सेना में बडे बड़े धर्नुधारी योद्धा भीम अर्जुन के समान हैं और महारथी भी युयधान बिराट और द्रुपद के समान हैं ।

(५) और राजा लोग भी धृष्टकेतु चेकितान काशिराज के समान हैं बलवान और पुरजित कुन्तिभोज शैव्य के ऐसे ऐसे सरदार हैं ।

(६) और बड़े बड़े बीरयुधामन्यु उत्तमोजा के ऐसे और सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु और द्रोपदी के पुत्र के नांइ हैं जो सबही महारथी हैं ।

(७) हे ब्रह्म के जानने वाले हमारी सैना के जो श्रेष्ट और सरदार लोग हैं तिनके नाम को मैं कहता हूं आपसुनो ।

•(८) आप और भीष्म पितामह कर्ण और कृपाचार्य अश्वत्थामा विकर्ण और सोमदत्तकापुत्र भूरिश्रवा है।

(९) इनके सिवाय और भी बहुत से शूरवीर जो हमारे लिये प्राण देने को तैयार हैं सब प्रकार के शस्त्र चलाने में भी प्रवीन हैं।

(१०) अवहमारी सेना जो भीष्म पितामह से रक्षित है सो ऐसी बलवान नहीं है जैसी के पांडवों की सेना भीमकरके रक्षित है।

(११) इसलिये आप लोग नाके नाके पर खड़े होकर भीष्महो की रक्षा करें।

(१२) इसपर भीष्म पितामहने जो कुरुवंशीयों में वड़े और बूढ़े प्रतापी हैं राजा दुर्योधन को प्रसन्न करने के वास्ते बड़े जोर से शङ्ख बजाया।

(१३) इसके पीछे शंख नगाड़ा ढ़ोल और गोमुख के एक साथ बजने से बड़ा भारी शब्द हुआ।

(१४) तिस के पीछे सफेद रंग के घोड़े से जोते हुये रथ में बैठे हुये श्रीकृष्ण और अर्जुन ने अपने शंख को बजाया।

(१५) श्रीकृष्ण भगवान ने पञ्चजन्य और अर्जुन ने देवदत्त और भीमसेन ने पौण्ड्रनाम के शङ्ख को बजाया।

(१६) युधिष्टिर महाराज ने अनन्तविजय को नकुल ने सुघोष को और सहदेव ने मणिपुष्पक नाम के शङ्ख को बजाया।

(१७) धनुर्धर काशी के राजा महारथी शिखंडी और धृष्टद्युम्न बिराट

और सात्यकी जिनका कभी पराजय नहीं हुआ है इन सब ने भी अपने अपने शङ्ख को बजाया।

(१८) राजा द्रुपद द्रौपदी के पुत्र और सुभद्रा के पुत्र महांबाहू अभिमन्यु ने अपने अपने शंख को बजाया।

(१९) इन सब शङ्खों से ऐसा शब्द हुआ के पृथ्वी और आकाश गूंज उठा कौरव कांप उठे और धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधनादिक उस से डर गये।

(२०) कौरवों को भले प्रकार खडे हुये देख कर अर्जुन ने अपने धनुष को उठाया और श्रीकृष्ण भगवान से कहा।

(२१) हेकेशव आपदोनो सेनाओंके बीच में मेरे रथको खड़ाकीजिये।

(२२) हम लड़नेवालों वीरों को देखें कि कौनकौन वीरसे इस संग्राम में मुझे युद्धकरना योग्य है ।

(२३) और कौन कौन राजा इस संग्राम में दुर्बुद्धि दुर्योधन की जय चाहते हुये कौरवों को प्रसन्न करने को आये हैं मैं देखना चाहताहूं ।

(२४) संजय ने राजा धृतराष्ट्रसे कहा कि हे राजन् इस भांति जब अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा तब भगवान ने रथको दोनों सेनाओं के बीच में खड़ाकर दिया।

(२५) और भीष्मपितामह और द्रोणाचार्य और बहुत से राजाओं के सामने यह कहा कि हे अर्जुन तुम भली भांति इन कौरवों को देखो ।

(२६) तब अर्जुन क्या देखते हैं कि कहीं चाचा कहीं दादा कहीं नाना

कहीं गुरु कहीं मांमू कहीं भाई कहीं बेटा कहीं पोता कहीं मित्र खडे हैं।

(२७) और क्या देखते हैं कि दोनो सेनाओं के बीच में ससुर और वड़े बड़े सज्जन लोग और भाई बन्धु सब खडे हैं तिनको देखकर।

(२८) बड़े बिषाद को प्राप्त हुये और कहा कि हे कृष्ण हम ने अपने वन्धुओं को देखा जो युद्ध के लिये खडे हैं।

(२९) परन्तु मेरा शरीर शिथिल हुआ जाताहै मुंह सूखता है और देह कांपती है और रोयें भी खड़े होते जाते हैं।

(३०) और गाण्डीव धनुष मेरे हाथ से गिरा जाता है और त्वचा भी मारे शोक के जलतीहै संग्राम में मैं खडा नहीं रह सकताहूँ और मेरे मन में भी भ्रम होता है याने चित्त घवडाता है।

(३१) हे केशव मुझ को सब बातें विपरीत दिखाई पडती है संग्राम में अपने बन्धुओं को मार कर अपना कल्याण मैं नहीं देखता।

(३२) हे कृष्ण मुझ को न राज चाहिये न सुख न मुझ को विजय चाहिये। हे गोविन्द हम राज लेकर क्या करेंगे वा भोग संयुक्त जीवन ही लेकर क्या करेंगे।

(३३) जिन वन्धुओं के लिये मैं राज अथवा सुख भोग चाहताहूं वही बन्धु जन संग्राम में प्राण देने को खड़े है।

(३४) वे कौन हैं कि गुरु हैं चाचा दि हैं पुत्रादि हैं दादा हैं पोते हैं साले हैं ससुर हैं मामु हैं और भी बहुत से कुटुम्ब हैं।

(३५) यद्यपि ये मुझे मारेगें तथापि मैं इनको तीनो लोक के राज के

लिये भी नहीं मारसकता हूं फिर पृथ्वी के लिये तो क्या मारूं गा।

(३६) हे जनार्दन धृतराष्ट्र के पुत्रों को मार कर मुझे क्या सुख होगा इन आततायियों के मारने से पापही होगा।

(३७) हे माधव इस कारण मैं इनको मारने के योग्य नहीं हूं क्यों कि अपने बन्धुओं को मार कर मैं सुखी नहीं हूंगा।

(३८) यद्यपि लोभ कर के इनकी बुद्धि नष्ट हुई है इस हेतु ये दुर्योधनादि कुल नाश का दोष वा मित्र द्रोह का पाप नहीं देखते है।

(३९) हे जनार्दन हम जो इस दोष को जानते हैं सो कैसे नहीं इस पाप से अलग रहें।

(४०) कुल के नाश होने से कुल का सनातन धर्म नष्ट होजाता है और धर्म के नाश होने से सब कुल पापी हो जाता है।

(४१) हे यादव हे कृष्ण कुल में पाप घुसने से स्त्री सब व्यभिचारनी हो जाती है और वर्णसंकर उत्पन्न करती हैं।

(४२) कुल के नाश करने वालों के कुल को वर्णसंकर नरक में पहुचावेगें और पितर लोग भी पिण्डक्रिया के नहीं होने से नरक में पडेगें।

(४३) कुल नाश करने वालों के वर्णसंकर उत्पन्न करने के दोष कर के जाति धर्म और कुल धर्म का नाश होता है।

(४४) हे जनार्दन हमने सुना है कि जिस मनुष्य का कुल धर्म नाश हो जाता है उसको निश्चय करके नरक वास होता है।

(४५) हाय बड़े कष्टकी बात है कि राज्य सुख के लोभ से हम अपने वान्धवों को मारने को तैयार हुये और बड़ा भारी पाप करने पर कमर बांधी।

(४६) यदि हम विना हथियार चुप बैठे रहें और धृतराष्ट्र के पुत्र सब हमको शस्त्र लेकर इस संग्राम में मारें तो मेरा बड़ा कल्याण हो।

(४७) संजय ने राजा धृतराष्ट्र से कहा कि हे राजन ऐसा कहकर अर्जुन अपने धनुष को उतार कर शोक में डूबा हुआ रथ के पीछे जाबैठा।

दूसरा अध्याय ज्ञान वर्णन—सांख्ययोग नाम

(१) संजय ने राजा धृतराष्ट्र से कहा कि हे राजन जब अर्जुन को आंख में आंसू भरे हुए व्याकुल और अत्यन्त क्लेशित देखा तब श्री कृष्णभगवान ने कहा।

(२) हे अर्जुन इस समय में यह कायरपना रण में तुम को कहां से उपजा इस से सिवाय अपकीर्त्ति और नरक के दूसरा क्या लाभ होगा और ऐसा कायर पना तो नीच को करना चाहिये।

(३) हे अर्जुन कादर मत हो यह तुम को नहीं शोभता नीचता और हृदय की दुर्बलता को त्याग के युद्ध के लिये खड़ा हो।

(४) तब अर्जुन ने भगवान से कहा कि हे मधुसूदन जो भीष्म पितामह और गुरू द्रोणाचार्य मेरे पूजा के योग्य हैं तिन को मैं इस संग्राम में बांण से कैसे मारूं।

(५) इन गुरू महाजनों को मार कर राज करने से भीख मांग कर खाना अच्छा है क्यों कि गुरु को मार करके तो इस लोक में हीरुधिर से सनेहुये राजभोग को मैं भोगूगा।

(६) ये हमको जीतें वा हम उनको जीतें इस बात को हम नहीं जानते और ये धृतराष्ट्र के पुत्र जिनको मार कर हम जीना नहीं चाहते वही मरने को सामने खड़े हैं।

(७) दीनता व अज्ञानता से मेरी बुद्धि नष्ट होगई है सो आप कृपा कर के कहिये कि मुझको इस समय क्या करना उचित है मैं आप का शिष्य हूं और आप के शरण हूं।

(८) यह शोक जो हमारे इन्द्रियों की चैतन्यता को नष्ट करता है तिस के दूर करने की सामर्थ इस समस्त पृथ्वीके राज अथवा स्वर्ग के राज को भी नहीं है।

(९) संजयने राजा धृतराष्ट्रसे कहा कि हे राजन् अर्जुन हृषीकेशभगवान से यह कहकर कि मैं युद्ध नहीं करूंगा चुप हो गया।

(१०) दोनो सेनाओं के बीच में अर्जुन को विषाद करते देख कर श्री कृष्ण ने हंस कर यह कहा।

(११) हे अर्जुन तुम तो जो शोच करने के योग्य नही हैं तिन के निमित्त शोच करते हो और पंडित के ऐसा बोलते हो परन्तु पंडित लोग तो जीते हुये और मरे हुओं का शोच नहीं करते ।

(१२) मैं तुम और ये राजा लोग जो सामने खडे हैं क्या इस जन्म के पहिले नहीं थे और क्या फिर जन्म नहीं लेंगे यह नहीं किन्तु सदा से होते आये हैं और होते जायगें ।

(१३) जिस तरह से बाल अवस्था व्यतीत होकर युवाअवस्था प्राप्त होती है और मालूम नहीं पडता कि कब एक अवस्था व्यतीत हुई और दुसरी प्राप्त हुई उसी तरह से एक शरीर छूटकर दूसरा शरीर भी प्राप्त होताहै बुद्धमान को उत्पत्ति और नाशके निमित्त मोहनही करना चाहिये ।

(१४ हे कुंती पुत्र पांचोज्ञान इद्रियोंके जो पांच विषय है तिन को इन्द्रियों के साथस्पर्श होने से कभीसुख और कभी दुःख होता हे जिस तरह शीतकाल में शीत दुखदाई होता है और उष्णकालमें सुखदाई होता है और उष्णकाल में उष्ण दुखदाई होता हैं और शीत सुखदाई होता है उसी तरह इन्द्रियों को उनका विषय कभी सुख देता है और कभी दुख इसलिये तुम इनको सहलिया करो क्योंकि येसदा आने जाने वाले हैं और अनित्य है।

(१५) जिनको ये सुख अथवा दुख कभी नहीसताते अर्थातजो लोग इनको सहालिया करते हैं और जो सुख दख दोनो को समान जानते हैं वही धीर्यवान और मुक्ति पाने के योग्य हैं।

(१६) महात्मालोगों ने इस बात को अच्छी तरह विचारा है कि सत्यका कभी नाश नहीं होता और असत्य की कभी प्रतीति नहीं होती इसलिये इन्द्रियों का सुख और दुख दोनो न सत्यहैं औरन असत्य हैं।

(१७) जिस से यह समस्त ब्रह्मांण्ड व्याप्त है उसी को अविनाशी जानो और इस विकार रहित अविनाशी को नाश करने की सामर्थ किसी को नहीं हैं।

(१८) इस नाशवांनदेह में देही जो आत्मा है सो नित्य और अबिनाशी है अर्थात इसका नाश नहीं होता इसलिये तुम युद्ध करो।

(१९) वह जो इस आत्माको मारनेवाला समझता है और वह जो इसको मरने वाला समझता है वे दोनो इस आत्मा को नहीं जानते

क्यों कि आत्मा न किसी को मारताहै और न किसी से मारा जाता है।

(२०) यह आत्मा न कभी जन्म लेता है और न कभी मरता है और नइसने कभी जन्म लिया और न कभी जन्म लेगा अर्थात आत्मा अजन्मा है तीनोकाल में रहता है और सनातन है और इसका क्षय किसी दशा में नहीं होता है और बहुत दिनका है और इस शरीरके नष्ट होजाने से आत्मा मर नहीं जाता।

(२१) तबहे अर्जुन जो इसको अजन्मा और तीनों काल में रहने वाला और विकार रहित जानता है वह किसको मारता है वा किसको मरवाता है अर्थात आत्मा अकर्त्ता है।

(२२) जिसतरह से आदमी पुराने वस्त्र को उतार कर नवीन वस्त्र

धारण करता है उसीतरह यह जीव पुराने देह को छोड़ कर नवीन देह को धारण करता है याने एक देह के त्यागने और दूसरे देह के धारण करने में कुछ दुख करना योग्य नहीं।

(२३) इस आत्मा को न कोई शस्त्र काट सकता है न इसको अग्नि जला सकती है न पानी गला सकता है और न हवा इसको सुखा सकती है।

(२४) यह आत्मा न कट सकता है और न गल सकताहै और न सूख सकता है यह तीनो काल में सब जगह रहने वाला है स्थिर है अचल है और सब दिन से चला आता है।

(२५) यह आत्मा कभी प्रगट नहीं होता है और न किसीके ध्यान

में आता है और न कभी विकार को प्राप्त होता है अर्थात जब आत्मा ऐसा है तब तुमको इसके लिये शोच नहीं करना चाहिये ।

(२६) हे अर्जुन यदि तुम इस आत्माको सदा जन्म लेनेवाला और सदा मरने वाला समझो तौ भी तो इसके लिये शोचनहीं करसकते ।

(२७) क्योंकि जिसने जन्म लिया है वह जरूर मरेगा और जो मरेगा वह जरूर जन्मलेगा तव तुमको ऐसी अवश्य होने वाली बात में शोकवान होना योग्य नहीं ।

(२८) ये सबजीव जोतुमको दिखाई देते हैं इस जन्म के पहिले कभी न दिखाई दिये थे और न मरने के बाद भी कभी दिखाई देगें तव इसका शोचना व्यर्थ है ।

(२९) यह आत्मा देखने में आश्चर्यवत् कहने में आश्चर्यवत् सुनने में आश्चर्यवत् है आजतक इसको किसी ने निश्चय नहीं कियाकि यह क्या है।

(३०) हे अर्जुन किसी देहधारी जीवों के देही अर्थात आत्मा का बध नहीं होसकता इसवास्ते तुम इनसब जीवों के लिये शोच नहीं कर सकते हो।

(३१) तुम अपने धर्म को भी देखकर कांपने के योग्य नहीं हो क्योंकि क्षात्रियों के लिए धर्म युद्ध के सिवाय दूसरा कोई कर्म कल्याण का करने वाला नहीं है।

(३२) हे अर्जुन ऐसायुद्ध जो आपसे आप प्राप्त हुआहो बड़े भाग्य-

वान क्षत्रियों को मिलता है उसको स्वर्ग का खुलाहुआ दरवाजा समझना चाहिये ।

(३३) यदि तुम इस धर्म रूपी युद्धको नहीं करोगेतो केवल तुह्मारा धर्म ही नहीं नष्ट होगा किन्तु तुह्मारे को बड़ाभारी अयश होगा और पाप भी होगा ।

(३४) सदा सब आदमी तुमको अयश देगें और तुमको यह अयश मरने से भी अधिक दुखदाई होगा ।

(३५) ये महा रथीलोग जो तुमको बड़ा बीर समझते हैं और सन्मान की दृष्टि से देखते हैं वह तुमको कादर कहेगें कि अर्जुन ने मृत्यु के डर से संग्राम नहीं किया और तब तुम इनके नजर में छोटे जंचोगे ।

(३६) शत्रु लोग तुम्हारे सामर्थ्य की ऐसा निन्दा करेंगे और जो बात नहीं कहने की सो भी कहेंगे अर्थात गाली देगें तब इस से बढ़ कर दुख तुमको और क्या होगा ।

(३७) हे कुन्ती पुत्रयदि तुम मारे जाओगे तो तुमको स्वर्ग मिलेगा जीतो गे तो राज करोगे इसलिये तुमनिश्चय करके युद्ध करने को उठो ।

(३८) सुख दुख हानि लाभ हारजीत को बराबर समझकर यदि कवल युद्ध के लियं युद्ध करोगे तो तुमको पाप नहीं होगा ।

(३९) हे अर्जुन यहांतक तुमको आत्मज्ञान का उपदेश किया अब योग की बात सुनो जिसको सुनकर ज्ञानयुक्त होकर तुम कर्म के बन्धन से छूटोगे ।

(४०) यदि तुम योग्य बुद्धि से कोई कर्म करोगे तो तुमको पाप नहीं होगा बल्के जो कर्म जितना करोगे उसका फल मिलेगा और इस धर्म का थोड़ा आचरण भी बड़ेभारी दुख से बचाता है।

(४१) व्यवसायी बुद्धि एक है अव्यवसायी बुद्धि अनेक है।

(४२) अज्ञानी और अविवेकी वेदवादी लोग वेदके पुष्पित बचन के कथनही में मग्न रहते हैं।

(४३) बिषयी लोग स्वर्गही के सुख को बड़ा भारी सुख समझते हैं जो सदा जन्म और कर्म का देने वाला है और जो लोग भोग और ऐश्वर्य में आशक्त हैं वह नाना प्रकार का कर्म किया करते हैं।

(४४) जो लोग स्वर्ग में आशक्त हो जाते हैं उनका चित समाधि

में नहीं लगता क्योंकि उनको योग बुद्धि नहीं उपजती।

(४५) हे अर्जुन बेद तो तीनो गुन को कथन करता है तुम तीनों गुण से रहित हो जाव और निर्द्वन्द अर्थात बेफ़िकिर होजाव और सदा एकरस रहो और जो बस्तु तुम्हारे पास नहीं हो उसके प्राप्ति का जतन मत करो और जो बस्तु तुम्हारे पास है उसकी रक्षा भी मत करो और आत्मा वाले अर्थात आत्म स्वरूप हो जाओ।

(४६) जिसतरह जलाशयों में से प्रयोजन भर जल लोग लेलेते हैं उसी तरह ज्ञानी बेद में से मतलब की बात को लेलेते हैं।

(४७) तुमको कर्महीं का अधिकार है फलका नहीं अर्थात कोई कर्म अपने खुशी से मतकरो जबकरो तब बेबस होकर करो और किसी कर्म

के संगी भी मत होजाओ याने जो कर्म कसदन किया जाता है उसका फल (दण्ड) भोगना पड़ता है और जो कर्म इच्छा रहित होकर किया जाता है उसका दण्ड भोगना नहीं पड़ता और किसी कर्म की आदत लगा लेने से कर्म बन्धन होजाता है सो न होना चाहिये ।

(४८) हे अर्जुन कर्म का फल त्याग कर योग में स्थित होकर कर्म को करो सिद्धि असिद्धि को एक समझने ही का नाम योग है ।

(४९) बिना विचारके जो कर्महै सो अत्यन्त नीचहै इसलिये जो कर्म करो सो बिचार करके करो और फलकी इच्छा करना तो बड़ीही कृपणताहै।

(५०) योग बुद्धिवाले अर्थात् परोपकारी को पाप पुण्य नहीं होता इस लिये योग में लगो क्योंकि योग सब कामों में कल्यान करने वाला है।

(५१) योगबुद्धिवाले पण्डित कर्म फल को त्याग कर जन्म बन्धन से रहित होकर रोग रहित पदको प्राप्त होते हैं।

(५२) जब तेरी बुद्धि मोह रूपी कीच से भली प्रकार निकल जावे गी तब मेरा उपदेश जो सुनाहै और जो आगे सुनेगा उस से तुझको बैराग्य होगा।

(५३) जब तेरी बुद्धि जो श्रुति स्मृति के वाक्यों से घबडाई हुई है सो जब समाधि में स्थित होगी तब तू योग को प्राप्त होगा।

(५४) अर्जुन ने पूछा कि हे केशव समाधि वाले योगी पुरुष का लक्षण क्या है और वह किस तरह बैठता है किस तरह बोलता है और किस तरह चलता है।

(५५) भगवान ने कहा कि हे अर्जुन जिसके मन से सब कामना दूर हो जाती है और जो सब वस्तु को आत्म स्वरुप समझ कर अपने आत्मा ही से तृप्त रहता है उसी को योगी कहते हैं।

(५६) जो दुख में व्याकुल नहीं होता है और सुख में हर्ष नहीं मानता है और किसी में लिप्त नहीं रहता है और किसी से डरता नहीं है और किसी पर क्रोध भी नहीं करता है उसी को योगी कहते हैं।

(५७) जो किसी से स्नेह नहीं रखता और न अच्छी वस्तु को पा कर प्रसन्न होता है और न बुरी वस्तु को पाकर अप्रसन्न होता है उसी को योगी कहते हैं।

(५८) जिस तरह से कछुआ अपने अंग को भीतर खींच लेता है

उसी तरह से जो पुरुष अपनी इन्द्रियों को विषय से· खींच लेता है उसी को योगी कहते हैं।

(५९) विषय की निवृत्ति मनुष्य के शरीर से तो हो जातीहै परन्तु उसके चित्त से विषय के वासना की निवृत्ति नहीं होती यह वासना की निवृत्ति परमात्मा के दर्शन ही से होती है अर्थात जिसकी विषय की वासना निवृत्त होजाय उसी को योगी जानो।

(६०) हे कुन्ती पुत्र इन्द्रियां ऐसी बलवान होती हैं कि ज्ञानी लोगों के मन को भी जबरदस्ती विषय में गिरा देती हैं।

(६१) जो इन्द्रियों को रोक कर मेरे में चित्तको लगाकर बैठाहै और इन्द्रियों को वश कर लिया है उसी को योगी कहते हैं।

(६२) विषय का ध्यान करने से विषय भोग की इच्छा होती है और विषय के भोग की इच्छा से काम उपजता है और जब इच्छा पूरी नहीं होती तब क्रोध होता है।

(६३) जब विषय का अधिक स्वाद मिलता है तब काम पैदा होता है काम से क्रोध क्रोध से अविचार अविचार से स्मृति का नाश हो जाता है और स्मृति (याद) के नाशसे बुद्धि नाशहो जाती है और जब बुद्धि नाश हुई तब आप भी नाश हो जाता है।

(६४) जो पुरुष न विषय की इच्छा रखता है और न उससे द्वेष याने नफरत रखता है और इन्द्रियों से उसको भोगता भी है परन्तु मन को अपने बस में रखता है वही आनन्द को प्राप्त होता है।

• (६५) चित्त प्रसन्न होने से सब दुखोंका नाश होता है और जिसका चित्त प्रसन्न रहता है उसकी बुद्धि समाधि में बहुत जल्द लगजाती है।

(६६) जो पुरुष यत्नशील नहीं है उनको योग बुद्धि नहीं होती और योग बुद्धि के न होने से चित्त उनका किसी वस्तु में नहीं टिकता और चित्त नहीं टिकनेसे शांति नहीं होती और शांति नहीं होनेसे सुख नही प्राप्त होता।

(६७) विषयमें जाने वाली इन्द्रियोंके साथ जब मन भी हो जाता है तब इन्द्रियां बुद्धि को हर लेती हैं जिस तरह नाव को पानी में वायु हर लेती है।

(६८) इस लिये हे अर्जुन जिसने अपने इन्द्रियों को बिषय से खींच लिया उसीकी बुद्धि योगवाली बुद्धि कहलाती है।

(६९) संसारी जिवों की दृष्टि जगत की ओर होती है इसीको जागना

कहते हैं और ईश्वर के तरफ पीठ होती है जिसको सोना कहते हैं परन्तु इसीका उलटा योगी लोग करते हैं याने जगत के तरफ पीठ रखते हैं याने सोते हैं और ईश्वर की तरफ मुख करते हैं याने जागते हैं।

(७०) जिस तरह समुद्र में कितनाही जल पड़ता है परन्तु वह अपने मर्यादा को त्याग कर कभी नहीं उभड़ता उसी तरह से योगी लोग सब ऋद्धि सिद्धि भी प्राप्त होने पर उन्मत्त नहीं होते हैं और शान्त रहते हैं परन्तु बिषयी लोगों को कभी शान्ति नहीं होती।

(७१) जो पुरुष सब कामनाओं को त्याग इच्छा, ममता, अहङ्कार रहित पृथ्वी पर बिचरता है वह पुरुष शान्ति को पाता है।

(७२) हे अर्जुन यह ब्रम्हज्ञान जो हमने तुमसे वर्णन किया इसको

पाकर कोई मोहको नहीं प्राप्त होगा और इसमें स्थित रहने से अन्तकाल में मोक्ष को प्राप्त होगा।

तीसरा अध्याय योग बर्णन कर्म्म योगनाम ।

(१) हे केशव यदि आपके मतसे कर्म से ज्ञान श्रेष्ठ है तो आप मुझे क्यों हिंसा कर्म में प्रेरते हैं।

(२) मालूम होता है आप मिश्रीत बाणी करके मेरे बुद्धि को मोह तेहो सो निश्चय करके कहिये कि मेरे लिये ज्ञान श्रेष्ठ है कि कर्म।

(३) हे अर्जुन इस लोक में दो प्रकार की निष्ठा है सो हम पहले ही कह आये हैं के ज्ञानीके लिये ज्ञान और योगी के लिये कर्म श्रेष्ठ हैं।

(४) बिना कर्म किये मनुष्य को ज्ञान नहीं हो सकता और कर्म के त्याग देने से भी सिद्धि को नहीं पा सकता है।

(५) कोई पुरुष बिना कर्म किये क्षण मात्र भी नहीं ठहर सकता है क्योंकि प्रकृति उससे जबरदस्ती कर्म करा लेती है।

(६) जो मन से विषय का स्मरण करता है और ऊपर से इन्द्रियों को रोके रहता है उस मूढ़ का आचार झूठा है।

(७) हे अर्जुन जो मन से ज्ञानेन्द्रियों को रोके रहता है और कर्मेन्द्रियों से कर्म करता है परन्तु विषय में लिप्त नहीं होता वह पुरुष श्रेष्ठ है।

·(८) नहीं कर्म करने से कर्म का करना श्रेष्ठ है इस लिये तुम प्रमाण युक्त कर्म करो अगर निर्बाह मात्र भी नहीं करोगे तो तुम्हारा शरीर भी नहीं रहेगा।

(९) यज्ञ के सिवाय और कर्म इस जीव को बन्धन का देने वाला है इस लिये हे अर्जुन कर्म में नहीं लिप्त होकर यज्ञ निमित्त कर्म करो।

(१०) ब्रह्मा ने आदि ही में प्रजाको यज्ञ अर्थात् परमार्थ कर्म करने के लिये पैदा किया और कहा कि हे प्रजा तुम इसी युगसे वृद्धि को प्राप्त होगे और यही तुम्हारा मनोर्थ पूरा करेगा यह मेरा आर्शीबाद है।

(११) इस यज्ञ से तुम देवताओं को प्रसन्न करो और देवता तुमको प्रसन्न करेंगे ऐसा परस्पर करने से दोनों कल्याण को प्राप्त होंगे।

(१२) यज्ञ से प्रसन्न हुये देवता तुमको मन बांञ्छित भोग देंगे परंतु जो देवताओं को बिना दिये हुये आप खाता है वह चोर है क्योंकि सब वस्तु देवताओं ही की दी हुई हैं।

(१३) जो यज्ञ के बचे हुए भाग को खाता है अर्थात् अतिथ अभ्यागत को खिला कर खाता है वह सब पापों से छूटता है और जो केवल अपने ही लिये पकाता है वह पापी है और पाप को खाता है।

(१४) जीव की उत्पत्ति अन्न से होती है अन्न वर्षा से उपजता है वर्षा यज्ञ से होती है।

(१५) कर्म वेद से उत्पन्न होताहै और वेद अविनाशी से और वह

अविनाशी पुरुष सर्व गत हैं तब यज्ञ में तो सदा ही· वर्तमान रहता है इस लिये यज्ञ करो।

(१६) हे अर्जुन जो कर्म का अधिकारी कर्म को नहीं करता उसका जीना पाप रूप है और वह देह का पोषने वाला है।

(१७) यद्यपि यह बात प्रसिद्ध है कि ज्ञानी जो आत्मा में तृप्त और संतुष्ट है उस को कोई कर्तव्य नहीं।

(१८) और न उस ज्ञानी को इसलोक में कर्म करने वा न करने का कोई पाप या प्रायश्चित है और न उसको इस संसार में किसी से मतलब ही है।

(१९) तथापि कर्मों में नहीं लिप्त हुआ जो पुरुष जरूरी कामको करता है वह परम पद को पाता है ।

(२०) और देखो जनक आदि लेके जितने महात्मा हुए हैं सबने कर्म ही केद्वारा सिद्धि को पायाहै और लोक में भी देखो तो सब कोइ कर्म ही करताहै बैठा कोइ नहीं रहता इस लिये भी तुम कर्म हीकरने लायकहो ।

(२१) इसके सिवाय जो कर्म बडा आदमी करताहै वही कर्म देखा देखी छोटे लोग भी करते हैं और जिसको अच्छेलोग प्रमाण करते हैं उसी को नीच लोग भी प्रमाण करते हैं ।

(२२) फिर देखो हे अर्जुन मेरे को इनतीनों लोक में क्या कर्तव्य है और क्या अप्राप्त है तौभी मैं कर्महीं में प्रवृत रहताहूं ।

(२३) यदि कभी मै हीं आलस करके कर्म को न करूं तो हे अर्जुन सबलोग मेरेही देखा देखी आलस से कर्म को छोड देंगें।

(२४) यदि मैं कर्म को छोड़दूं तो संसारी जीवभी देखादेखी कर्म को छोडकर भ्रष्ट हो जायगें तब मेरी प्रजा बर्णशंकर हो जायेगी और उसका कर्ता मैं हीं कहलाऊंगा।

(२५) हे अर्जुन जिसतरह अज्ञानी कर्ममें लिप्त होकर उसको करता है उसी तरह ज्ञानी कर्ममें नहीं लिप्त हुआ लोगों की भलाई के वास्ते सब कर्मों को करता है।

(२६) परन्तु ज्ञानी को चाहिये कि जो अज्ञानी कर्म में लिप्त होकर

कर्म को कर रहा है उसको ज्ञानहीं उपदेश करें किन्तु आपभी कर्म को करें और उससे भी कर्म ही करावें।

(२७) क्योंकि जितना कर्म है सो सब प्रकृति ही (रजोगुण और तमोगुण) कराती है किन्तु मूढ लोग मानते हैं कि मैं करता हूं।

(२८) हे अर्जुन जो तत्ववेत्ता पुरुष हैं वह भली भांति जानते हैं कि कर्म स्वाभाविक गुणों हीं से उत्पन्न होता है इसी लिये वह कर्म में आशक्त नहीं होते इस को गुण का कार्य समझते हैं।

(२९) जोजड़ मनुष्य प्रकृतिके गुण करके कर्ममें अत्यन्त लिप्त होरहेहैं उस मूढ को ज्ञानी ज्ञान उपदेश करके कर्म से कभी न हटावे।

(३०) हे अर्जुन तुम सब कर्म मेरे में ज्ञान से समर्पण करके आशा ममता और संताप रहित होकर युद्ध करो।

(३१) जो पुरुष श्रद्धा सहित निन्दा रहित मेरे इस मत का सदा अनुष्ठान करता है वह कर्म बंधन से छूट जाता है।

(३२) और जो मेरे इस मत को नहीं अनुष्ठान करता बल्कि निन्दा करता है उस मूढ़ को सब ज्ञान से मूर्ख जानो।

(३३) जिस तरह ज्ञानी अपनी प्रकृति के अनुसार चेष्टा करता है उसी तरह सब जीव अपनी प्रकृति के अनुसार चेष्टा करते हैं तो अ-ज्ञानी कैसे इन्द्रिय निग्रह करें सो कहता हूं।

(३४) जिस तरह इन्द्रियां अपने अपने विषयों के साथ राग द्वेष

रखती हैं उसी तरह मनुष्य को चाहिये के आपभी विषयों से रागद्वेष न रक्खें क्योंकि यही रागद्वेष मोक्ष मार्ग का शत्रु है।

(३५) अपना धर्म यदि दूसरे के धर्म की अपेक्षा मन्द भी होतो उत्तम है अपने धर्म में मरण भी श्रेष्ठहै क्योंकि पराया धर्म नर्क को देने वाला है।

(३६) अर्जुन ने पूछा कि हे भगवान यह जीव पापकी इच्छा नहीं करता हुआ भी पाप करता है सो किसकी प्रेरना से करता है मालुम होता है के कोई जबरदस्ती प्रेर करके करा देता है।

(३७) भगवान ने कहा कि काम और क्रोध जो रजोगुणसे उत्पन्न होता है इस को कितनाही भोगो पर उस की तृप्ति नहीं होती यह

बड़ा पापी है यही जीवको प्रेरकर पाप कराता है इसको तुम बैरी समझो।

(३८) जिसतरह धूएँ से अग्नि ढकजाती है और मैल से दरपण और चादर से गर्भ ढका रहता है उसी तरह काम और क्रोध करके आत्मा ढका रहता है।

(३९) हे कुन्ती पुत्र यह काम ने जो ज्ञान को ढकरक्खाहै ज्ञानी का सब दिनका बैरीहै और इसका सुभाव अग्निकाहै इसका पेटनहीं भरता।

(४०) इस काम के रहने का स्थान इन्द्रिय मन और बुद्धि हैं यह तीनों ज्ञान को दबाकर जीव को मोह लेते हैं।

(४१) इसलिये हे अर्जुन पहिले इन्द्रियों को रोको पीछे इस पापी को मारो यही सब ज्ञान बिज्ञान को नाश करने वाला है।

(४२) इन्द्रियां अति बलवान हैं इन्द्रियों से मन, मन से बुद्धि, बुद्धि से आत्मा बलवान है।

(४३) हे अर्जुन यह आत्मा जो बुद्धि से श्रेष्ठ है उसको जानो और उसी बुद्धि से मनको रोको और काम रूपी शत्रुको जो बड़े दुख से जीता जाता है जीतो।

योग और सन्यास वर्णन कर्म्म सन्यास योग नाम चौथा अध्याय।

(१) भगवान ने कहा कि यह विकार रहित योग हमने सूर्य्य से कहा, सूर्य ने राजा मनु से कहा, मनुने इक्ष्वाकू से कहा।

(२) हे अर्जुन यह योग परम्परा से चला आता है इस को राजर्षि लोग जानते आये परन्तु बहुत दिन हो जाने वो काम क्रोध के प्रवल होने से यह योग लुप्त हो गया है ।

(३) वह योग यही है जो हम ने तुम से अभी कहा क्योंकि तुम हमारे मित्र हो और हमारे भक्त हो इस लिये यह उत्तम बात मैंने कही ।

(४) अर्जुन ने कहा आप का जन्म तो हाल में हुआ है और सूर्य का जन्म तो सृष्टि के आदि में हुआ था मैं कैसे जानूं के आप ने सूर्य से आदि में कहा ।

(५) भगवान ने कहा के हे अर्जुन हमारा और तुम्हारा जन्म बहुत

मरतबे हो चुका है मैं सब की बात को जानता हूं और तुम एकभी जन्म की बात को नहीं जानते।

(६) यद्यपि मेरी आत्मा विकार रहित है और मैं अजन्मा भी हूं। और जीवों का ईश्वर भी हूं तोभी मैं अपनी माया का आश्रय करके और अपनी शक्ती करके होता हूं।

(७) हे अर्जुन जब जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब तब मैं प्रगट होता हूं।

(८) साधुओं की रक्षा और दुष्टों के नाश वो कर्म के स्थिर करने के वास्ते सब युग में मैं जन्म लेता हूं।

(९) हे अर्जुन जो मेरे जन्म और कर्म को भली भांति जानताहै वह

जब शरीर को त्याग करता है तब फेर जन्म नहीं पाता किन्तु वह हमारे ही रूप में मिल जाता है।

(१०) ज्ञान रूप करके पवित्र हुआ है और हमारे ही आश्रय रखता है और हमारे ही में मन लगाये रहता है राग और क्रोध करके रहित है ऐसे बहुत से पुरुष हमारे स्वरूप को प्राप्त हुए हैं।

(११) हे अर्जुन जो पुरुष मुझ को जिस तरह भजता है सकाम निष्काम उस पुरुष को मैं भी उसी तरह भजता हूं (याने फल देता हूं) क्योंकि सब प्रकार से पुरुष मेरे ही और आते हैं।

(१२) कर्मों की सिद्धि चाहने वाले लोग इस जगत में देवताओं को पूजते हैं क्योंकि मनुष्यां को सिद्धि कर्म से जल्दी होती है।

(१३) गुण और कर्म के अनुसार मैंने चारो वर्णों को सिरजा यद्यपि मैं यह नहीं करता हूं तोभी मेरे को इनका अकरता जानों क्योंकि मैं इन विकारों से रहित हूं ।

(१४) न मुझको कर्म का बन्धन होता है और न मुझ को कर्म फलकी इच्छा है ऐसा मुझ को जो जानता है वह वन्धन से छूटता है ।

(१५) ऐसा जानकर पहले के मुमुक्षु लोगों ने भी कर्म को किया है पहले से पहले भी लोग कर्महो करते आये इसलिये तुमभी कर्महीं करो।

(१६) कौन कर्म करना चाहिये कौन कर्म नहीं करना चाहिये इस में कवि लोगों को भी सन्देह हुआ है इसलिये क्या करना चाहिये सो मैं तुमसे कहता हूं जिसको जान कर तुम संसार बन्धन से छूटोगे।

(१७) कर्म अकर्म और विकर्म इन तीनों को जानना चाहिये इस में कर्म की गति बड़ी कठिन है वे दोक्त विधि को कर्म, वेदोक्त निषेध को विकर्म और कुछ न करने को अकर्म कहते हैं।

(१८) जो कर्म में अकर्म और अकर्म में कर्म देखता है सो मनुष्यों में ज्ञानी है समझने वाला पुरुष और मनुष्यों में बुद्धिमान है और वह सब कर्म करता हुआ भी कुछ नहीं करता है उसी को बुद्धिमान लोग पंडित कहते हैं और उसका मन कर्म-ज्ञान-रूपी-अग्नी से भस्म हो जाता है।

(२०) जो कर्म फल में आशक्त नहीं है और सदा तृप्त रहता है और किसी का आसरा नहीं रखता है वह सब कर्म करता हुआ भी कुछ नहीं करता।

(२१) जो आस रहित हुआ है और जिसने अपने चित्तको जीत लिया है और सब झंझट से अलग हुआ है और केवल अपने शरीर के निर्वाह मात्र कर्म करता है वह पाप भागी नहीं होता।

(२२) जो बिना मांगे मिलजाये उसी में संतोष करताहै और बेफिकिर रहता है और किसी से डाह नहीं करता और चाहे कार्य सिद्धि हो या नहो इसकी परवाह नहीं करता ऐसा पुरुष कर्म करता हुवाभी वन्धन को नहीं पाता।

(२३) जो किसी में आशक्त नहीं है और सबसे अलग है और ज्ञान ही में है चित्त जिसका और केवल यज्ञ करता है अर्थात परमार्थ

कर्म करता है उसका सब कर्म बिला जाता है याने उसका बन्धन नहीं होता है।

(२४) यज्ञ का पात्र भी ब्रह्म है और जो अग्नि में डाला जाता है सो भी ब्रह्म है अग्नि भी ब्रह्म है यज्ञ करने वाला भी ब्रह्म है होम भी ब्रह्म है ऐसा कर्म में ब्रह्म ही चिन्तवन करने वाला पुरुष ब्रह्म ही को प्राप्त होता है।

(२५) कोई ब्रह्म यज्ञ करता है कोई देव यज्ञ करता है अर्थात् यज्ञ निमित्त देवताओं को पूजता है।

(२६) कोई इन्द्रियों को संयम रूप अग्नि में हवन करते हैं अर्थात इन्द्रियों को विषयों से रोक रखते हैं कोई इन्द्रिय रूप अग्नि में विषय

हवि हवन करते हैं अर्थात इन्द्रियों को संतुष्ट करनेके वास्ते विषय भोग करते हैं।

(२७) कोई इन्द्रियों के कर्म को और प्राणों के कर्म को आत्मसंयम कर योग अग्नि को ज्ञान से प्रज्वलित करके उसमें हवन करते हैं अर्थात इन्द्रियों को और प्राणों को रोककर समाधी लगाते हैं।

(२८) कोई द्रव्य यज्ञ यानीतीर्थ यात्रा ब्राह्मणभोजन साधु सेवा करते हैं कोई तप करते हैं कोई समाधि लगाते हैं कोई शास्त्र पढ़ते हैं कोई ज्ञानयज्ञ करते हैं और इसमें ऐसी मिहनत करते हैं मानो छुरी की धार पर खेलते हैं।

(२९) कोई प्राण वायु में अपान वायु का और अपान में प्राण वायु

का हवन करते हैं और प्राण अपान को रोक कर प्राणायाम करते हैं।

(३०) कोई थोड़ा भोजन करके प्राण को कमजोर करके प्राण को रोकते हैं और जो सब यज्ञ कह आये हैं इसके जानने वाले अपने अपने पाप को क्षय करते हैं।

(३१) हे अर्जुन जो लोग यज्ञ के बचे हुए भाग को भोजन करते हैं अर्थात यज्ञ करके खाते हैं वह ब्रह्म को प्राप्त होते हैं और जो यज्ञ नहीं करते हैं वे इसी लोक में सुख नहीं पाते हैं तो परलोक में कहांसे पावेगें।

(३२) ऐसे ऐसे यज्ञ वेद में बहुत लिखे हैं परन्तु ये सब कर्म फल के देने वाले हैं इसको भी जानने से मोक्ष होता है।

(३३) हे अर्जुन द्रव्यादिक जितने यज्ञ है सबसे ज्ञान यज्ञ श्रेष्ठ है क्योंकि सब यज्ञ ज्ञानही के वास्ते किया जाता है।

(३४) इस ज्ञान को सीखने के वास्ते महात्मा लोगों के पास जाकर दण्डवत प्रणाम करके प्रश्न करो और उनकी सेवा करो तो वे महात्मा कृपा करके तुमको ज्ञान उपदेश करेंगे।

(३५) हे अर्जुन तू इस ज्ञान को लाभ करने से फिर मोह को नहीं प्राप्त होगा और सब जीवो को अपने में या मेरेमें देखेगा।

(३६) यह ज्ञान ऐसा हैं कि यदि तू सब पापियों का सरदार भी होगा तो यह ज्ञान रूपी जहाज करके पापरूप समुद्र को जरूर तर जावेगा।

(३७) जैसे लकड़ी को अग्नि भस्म कर देती है तैसे ज्ञान सब कर्म को भस्म कर देता है ।

(३८) इस ज्ञान के सदृश पवित्र इस संसार में और कुछ नहीं है सो ज्ञान योगी को काल पाकर आप से आप प्राप्त होता है ।

(३९) जिस को विश्वास होता है और बड़ा लौलीन होता है और जो जितेन्द्रिय होता है उसी को ज्ञान प्राप्त होता है और वह ज्ञान पाकर बहुत जल्द शान्ति को पाता है ।

(४०) जो अज्ञानी है और जिसको विश्वास नहीं है और सदा संशय में डूबा रहता है वह नाश को प्राप्त होता है संशय वाले को न इस लोक का सुख मिलता है और न परलोक का सुख प्राप्त होता है ।

(४१) हे अर्जुन जिसने जोग से कर्म फल का त्याग किया है और ज्ञान से संशय को दूर किया ऐसे आत्मनिष्ठ पुरुष को कर्म का बन्धन नहीं होता।

(४२) हे अर्जुन जो संशय तुम्हारे हृदय में अज्ञानता से उपजता है उस संशयको ज्ञान रूपी तलवारसे काटो और योग का आश्रय करके उठो।

सन्यास वर्णन सन्यास योगा-नाम पांचवां अध्याय।

(१) अर्जुन ने पूछा कि हे भगवान कभी सन्यास अर्थात् कर्म के त्याग की प्रशंसा करते हो और कभी आप योग अर्थात् कर्म की प्रशंसा

करते हो सो इन दोनो में से एक जो कल्यान कारक हो सो निश्चय करके मुझसे कहो।

(२) भगवान ने कहा कि हे अर्जुन सन्यास और योग दोनो मोक्ष के देने वाले हैं परन्तु सन्यास याने कर्म के त्यागने से योग अर्थात कर्म का करना श्रेष्ठ है।

(३) जो न किसी से द्वेष करता है और न किसी से कुछ मांगता है और सदा निर्द्वन्द रहता है उसी को हे अर्जुन तुम संन्यासी समझो और वह सुख पूर्वक बन्धन से छूटता है।

(४) ज्ञान और योग को जो दो कहते हैं सो बालक हैं वह पंडित

नहीं हैं क्योंकि इन दोनों में से एक में स्थित होने से दोनों का फल प्राप्त होता है।

(५) जो स्थान ज्ञान से प्राप्त होता है सो योग से भी प्राप्त होता है और जो ज्ञान और योग को एक देखता है वही आंख वाला है।

(६) हे अर्जुन बिना कर्म किये कर्म का त्यागना बड़ा कठिन है और कर्म करने वाला मुनि ब्रह्म को जल्दी पाता है।

(७) कर्म करने वाला पुरुष जब पवित्र आत्मा होता है और आत्मा को जीत लेता है और इन्द्रियों को बश कर लेता है और सब की आत्मा को अपनी आत्मा समझता है तब वह कर्म करता हुआ बन्धन को नहीं पाता है।

(८) तत्व का जानने वाला योगी देखता हुआ सुनता हुआ स्पर्श करता हुआ सूंघता हुआ खाता हुआ चलता हुआ सोता हुआ स्वांस लेता हुआ भी मानता है कि मैं कुछ नहीं करता हूं।

(९) क्योंकि ज्ञानी समझता है कि बोलना त्यागना ग्रहण करना आंख को खोलना और बंद करना ये सब काम इन्द्रियों के हैं।

(१०) जो पुरुष कर्म को ब्रह्म में समर्पण करके बिना लिप्त हुये करता है उस को पाप नहीं लगता है जैसे जल कमल के पत्ते में नहीं सटता।

(११) योगी लोग आत्म बुध्दि के वास्ते कर्म के संग को त्याग करके केवल शरीर से मन से बुध्दि से इन्द्रियों से कर्म को करते हैं।

(१२) योगी कर्म फल को त्याग कर शान्ति को पाताहै और विषयी कामना वश फल में आसक्त होने से बन्धन को प्राप्त होताहै।

(१३) वशमें किया हैं मन को जिस ने ऐसा देही अर्थात देह का मालिक आत्मा सब कर्मों को त्याग नए दरवाजे वाले मकान में सुख पूर्वक बैठा है न कुछ करता है न कराता है।

(१४) परमेश्वर ने किसी जीव के लिये कोई खास काम मुकरर नहीं किया और न किसी खास कर्म का खास फल निर्माण किया किन्तु सब अपने अपने सुभावही से अपना अपना कर्म करते हैं।

(१५) ईश्वर न किसी का पाप लेता है न पुण्य केवल अज्ञान से ज्ञान ढक गया है इसीसे जीव मोह को पाता है।

(१६) जिसका अज्ञान ज्ञान से नाश हुआ है उसका ज्ञान उसके आत्मा को वैसाही प्रकाश करताहै जैसे सूर्य्य जगतका प्रकाश करताहै।

(१७) जो पुरुष ज्ञानहीं में अपनी बुद्धि को रखता है मनभी उसी में लगाये रहता है जिसका इष्ट अर्थात पूजन के देवता भी वहीहै और जो उसीमें डूबा रहता है और जिसने उसी ज्ञानसे अपने सब पापों को दूर किया है वह फिर जन्म को नहीं पाता।

(१८) पण्डितलोग विद्वान सज्जन ब्राह्मण को डोमको गौको हाथी को कुत्ते को एक भाव से देखते हैं अर्थात अपने जी में विचार तो है कि सबका शरीर अस्थि मांसनाड़ी त्वचा रोमका है और एक ही आत्मा भी सबमें परिपूर्ण है इसलिये सब जीव तुल्य हैं।

(१९) जिसकी भावना सबजीवों में एक है अर्थात सबजीवों को तुल्य समझता है उसने जीते जी इस संसार को जीत लिया है ब्रह्म निर्दोष है और सबमें समानहै ऐसा जानकर वह ब्रह्ममें स्थित होताहै ।

(२०) जो प्रिय वस्तु को पाकर प्रसन्न नहीं होता और अप्रिय को पाकर ग्लानि नहीं करता वह निश्चल बुद्धि वाला ब्रह्म को जानता हुआ ब्रह्म में स्थित होता है ।

(२१) जो बाहर के वस्तु में लिप्त नहीं रहता है किन्तु समाधिस्थ रहता है अर्थात अपने चित्त की वृति को शरीर के बाहर जाने नहीं देता है भीतरही रोककर आत्मा का सुख अनुभव करता है और वह पीछे उस सुख को लाभ करता है कि जिसका नाश नहीं है ।

(२२) इन्द्रियों के विषय के स्पर्श से जो सुख उपजता है वह दुख दायी है क्योंकि होता और जाताहै इस लिये बुद्धिमान लोग इस सुखमें नहीं रमण करते।

(२३) जो काम और क्रोध के वेगको शरीर छुटने के पहिले ही याने जीते जी सहता है वही योगी है और वही सुखी है।

(२४) जो अपने शरीरके भीतर सुखी रहताहै और भीतरही विहार करता और भीतर ही दृष्टि रखता है वह योगी ब्रह्मस्वरूप हुआ निर्वाण पद को पाता है।

(२५) जिस ऋषि का पाप क्षीण हो गया है और जिसने मनको वस

करलिया है और सब जीवों की भलाई में मुस्तैद रहता है वह निर्वाण ब्रह्म को पाता है।

(२६) जिस सन्यासी को किसी बात की कामना नहीं है और क्रोध भीनहीं करताहै और जिसने चित्तकी वृत्तिको जय कियाहै और आत्मा का साक्षात्कार कियाहै वह जरूर निर्वाण ब्रह्म को प्राप्त होता है।

(२७) बाहर की वस्तुसे चित्तको हटाके दोनो नेत्रों की दृष्टि को दोनो भौंहें के बीच में टिकावे और प्राण और अपनी बायु को नासिका के भीतरही बराबर करके रोकरखे।

(२८) इन्द्रिय मन बुद्धि को जीत मुक्ति के वास्ते यत्न करता हुआ इच्छाभय क्रोध को त्याग दिया है जिस मुनि ने वह सदा मुक्त स्वरूप है

(२९) मैं जो यज्ञ और तप का भोगने वालाहूं और सब लोकों का स्वामी हूं और सब जीवों का मित्र हूं ऐसा मुझ को जान कर पुरुष शान्ति को पाता है।

छठवां अध्याय आत्मसंजय योग नाम।

(१) भगवान जी बोले कर्म फलकी आशा छोड़ जोजरूरी कामकरता है वही सन्यासी है और वही योगीहै जिसने अग्निहोत्र अथवा लौकिक कर्म त्याग दिया है वह संन्यासी नही है।

(२) हे अर्जुन जिसको सन्यास कहते हैं उसी को योग भी कहते हैं ऐसा तुम जानो क्योंकि बिना संकल्प त्यागे कोई योगी नहीं होसकताहै।

(३) योग में प्रवेश करने वाले के वास्ते कर्म का करना जरूरी है और जो योग में पक्का होगया है उसके लिये कर्म का त्यागना जरूरी है क्यों कि त्याग बिना शान्ति नहीं होती।

(४) जब इन्द्रियां किसी विषयमें या किसी कर्ममें आशक्त न हों और सब संकल्पों का त्याग हो तब जानों कि यह योग में पक्का हुआ।

(५) मनुष्य को चाहिये कि आत्मा को आत्मा से उद्धार करे अर्थात सुधारे और कभी आत्मा को आत्मा से गिरावे नहीं अर्थात

नींच गति को नलेजावे क्यों कि मन ही आत्मा का मित्र है और मन ही आत्मा का शत्रु है ।

(६) जिसने अपने मन को जीता है उसका मन उसके लिये मित्र है और जिसने अपने मनको नहीं बसकिया उसकामन उसके लियेशत्रुहै ।

(७) जिस ने मन को जीता है और शान्त चित्त हुआ है उसका आत्मा सर्दी गर्मी सुख दुख मान और अपमानमें सावधान रहताहै ।

(८) ज्ञान विज्ञान से तृप्त है आत्मा जिसका और अचल है अंतः-कर्ण जिसका और जो जितेन्द्रिय है और जो पत्थर और सोने को बराबर समझता है वही पक्का योगी है ।

(९) जो सुहृद मित्र शत्रु उदासीन मध्यस्थ द्वेषी वन्धु साधु और पापीको बराबर समझता है सो श्रेष्ठ है ।

(१०) योगी को चाहिये कि एकान्त में बैठ कर अपने चित्त को रोके और न किसी वस्तुकी आशारक्खे और न किसी वस्तुसे सरोकार रक्खे ।

(११) आसन का नियम यह है कि पवित्र स्थान में जो न बहुत ऊंचाहो और न बहुत नीचाहो पहिले कुशकी चटाई बिछावे उसके ऊपर सेमृगछाला और तब फिर उसके ऊपरसे वस्त्र बिछाकर स्थिर होकरबैठे।

(१२) आसनपर बैठकर पहिले इन्द्रियों को शब्दादि विषयोंसे रोके और तिस के पीछे मन को एकाग्र करके अन्तः करण को पवित्र करै तब समाधि लगावै ।

(१३) शरीर गला और सिर इनको सीधा रक्खे और डोलावे नहीं और केवल नासिका के अग्रभाग को देखै इधर उधर ताके नहीं।

(१४) शान्तरहे डरै नहीं स्त्रीपर चित्त न लेजाय मनको रोके रहे मेरे में चित्त को लगाये सावधान रहे और हमारे स्वरूप का अनुभव करता बैठारहे।

(१५) जो योगी सदा इसतरह योगाभ्यास करता है और मन को सदा अपने वस में रखता है वह अत्यन्त उतकृष्टशान्ति को पाता है और हमारे में स्थित होता है।

(१६) हे अर्जुन जो बहुत भोजन करता है या एकदम भूखारहता

है उसको समाधि नहीं होती और जो बहुत सोता है या कभी नहीं सोता उसको भी समाधि नहीं होती।

(१७) जो हिसाब से खाता पीता चलता फिरता जागता सोता बिहार करता है अर्थात सबकाम हिसाब से करता है उसका योग दुख का हरने वाला होता है।

(१८) जिसका चित्त आत्मा के सिवाय और कहीं नहीं ठहरता है और जिसको किसी प्रकारका काम नहींहोता उसी को पक्का योगीजानो।

(१९) जिसतरह पवन रहित स्थानमें दीप अचल रहताहै अर्थात बुझता नहीं उसी तरह योगी को चाहिये कि अपने चित्तको डोलमाल होने नदे अर्थात एकाग्र करके आत्मा का अनुभव करे।

(२०) योगाभ्यास से जब चित्त एकाग्र होकर संसार से उपराम हो और अपने आत्मा से आत्मा दिखाई दे और आत्मा ही से तृप्ति हो तब जानना कि योग सिद्ध हुआ।

(२१) अत्यन्त सुख, जिस को इन्द्रियां नहीं जान सकती हैं केवल बुद्धि करके जाना जाता है उस सुख को जानने से फिर योगी अपने रूप से नहीं पतन होता।

(२२) जिस लाभ से बढ़कर कोइ दूसरा लाभ नहीं है और जिस में स्थिर होने से फिर कैसा ही भारी दुख क्यों न हो नहीं गिरा सकता है।

(२३) जिस में दुखका लेशनहीं है उसी को योग समझो यह योग एकाग्र चित्त से निश्चय करके अभ्यास करने योग्य है।

(२४) संकल्प से जो कामना उपजती है उन सबको त्याग कर मन से सब इन्द्रियों को रोके।

(२५) धीरे धीरे सब कामों से अराम हो और बुद्धि से अपने मन को आत्मा में स्थित करे और किसी बातकी चिन्ता न करे।

(२६) यह चंचल मन जहां जहां जाय तहां से हटावे और अपने आत्मा में इस मन को लय करे।

(२७) जिस योगी का रजोगुण शान्त हो गया है अर्थात् जिस की प्रवृति किसी कर्म में नहीं होती और मन भी शान्त हुआ है और सब पापों से रहित हुआ है और रात दिन ब्रह्म ही का चिन्तवन करता है वह उत्तम सुख पाता है।

(२८) योगी जब इस तरह से सदा मन को अपने बस में रखता है तब वह अत्यन्त सुख को पाता है अर्थात उसका ब्रह्म साक्षातकार हो जाता है और उसका सब पाप दूर हो जाता है।

(२९) समदरशी योगी अपनी आत्मा को सब जीवों में देखता है और सब जीवों को अपनी आत्मा में देखता है।

(३० जो मुझको सर्वत्र देखता है अर्थात सब वस्तु में देखता है और सब वस्तु को मुझ में देखता है उसका नाश न हम करते न वह मेरा नाश करता है।

(३१) जो पुरुष अद्वैत पद में स्थित है और मुझको सब जीवों में

स्थित समझ कर भजता है वह योगी किसी हालत में रहे मेरे स्वरुप में रहता है।

(३२) हे अर्जुन जिस तरह आत्मा सर्वत्र है उसी तरह सुख दुख भी सर्वत्र है अर्थात सब जीवों को सुख दुख तुल्य होता है ऐसा जानने वाला योगी श्रेष्ठ है।

(३३) अर्जुन ने कहा की हे मधुसूदन यह योग अद्वैत का जो आप ने वर्णन किया जिसकी तिसकी स्थिति मुझ को नहीं देख पड़ती क्योंकि मन बड़ा चंचल है।

(३४) हे भगवान यह मन ऐसा चंचल और जबरदस्त है कि इस का रोकना पवन से भी कठिन है।

(३५) भगवान ने कहा कि हे अर्जुन तुमने जो मन को चंचल और जबरदस्त कहा इसमें संशय नहीं किन्तु यह मन बैराग और अभ्यास से जीता जाता है।

(३६) मेरा मत यह है कि जिस ने मन को नहीं जीता उस को योग दुर्लभ है किन्तु जिस ने मन को जय कियाहै वैराग्य और अभ्यास से उसको योग सुलभ है।

(३७) अर्जुन ने पूछा हे कृष्ण योगाभ्यास करते करते मन जिस का उचट गया और सिद्धि नहीं प्राप्त हुई उसकी क्या गति होती है?

(३८) हे भगवान क्या वह ब्रह्म पथ से मूढ उभय भ्रष्ट होकर बादल के टुकड़े की नाइ नष्ट भ्रष्ट हो जाता है या नहीं।

(१) दोनों तरफ—करम वा जोग।

(३९) हे कृष्ण हमारे यह सब संशय को आप ही दूर कर सकते हैं आप के सिवाय दूसरा कोइ इस संदेह को नहीं निवृत कर सकताहै।

(४०) भगवान ने कहा कि हे अर्जुन जिसका योग भ्रष्ट हो जाताहै उसका नाश न इस लोक में होता है न परलोक में होताहै क्योंकि अच्छे कर्म करने वाले की दुर्गति कभी नहीं होती।

(४१) जिस का योग भ्रष्ट हो जाता है वह बहुत काल स्वर्गमें निवास कर ब्राह्मण के घर या धनवान के घर जनम लेता है।

(४२) अथवा ज्ञानवान योगियों के घर में जन्म लेता है जो जन्म इस संसार में दुर्लभ है।

(४३) हे अर्जुन तब वह फिर उसी योग को अभ्यास करता है जो पूर्व जन्म में किया था।

(४४) वह योगी को यदि कोइ प्रतिबंध कभी हो जाता है तो पूर्व अभ्यास केवल से फिर योग में प्रवृत्त हो जाता है और जो योग जानने की इच्छा रखते हैं उनको भी शास्त्र का ज्ञान हो जाता है।

(४५) जो योगी जब जब जन्म लेताहै तब तब योगाभ्यास करता है अन्त में परम गती को पाता है।

(४६) हे अर्जुन योगी तपस्वी से और ज्ञानी से और कर्मकांडी से श्रेष्ट है ऐसा मेरा मत है इस लिये तुम योगी हो।

(४७) सब योगीयों में वही श्रेष्ट है जो मेरे में मन चित्त लगा कर मुझ को विश्वास करके भजता है।

सातवां अध्याय ज्ञानविज्ञान योग नाम।

(१) भगवान ने कहा हे अर्जुन मुझसे ही मनको लगाये और मेरा ही आसरा रखते हुये योगाभ्यास करता हुआ तू जिस तरह मुझको पूर्ण रूप से निसंदेह जानेगा सो सुन।

(२) मै वह समस्त ज्ञान और विज्ञान तुझसे कहूंगा जिसको जान कर फिर तुझको इस संसार में जानने योग्य कुछ बाकी न रहेगा।

(३) हजारों मनुष्यों में से कोइ एक सिद्धि के लिये यत्न करता है उस सिद्धि वालों में से विरला ही कोइ मुझको यथार्थ रितिसे जानताहै ।

(४) पृथ्वि जल अगनी वायु आकाश मन बुद्धि अहंकार ये आठ प्रकार की मेरी प्रकृति हैं ।

(५) इस को तो तुम अपरा जानो और इस्से भिन्न दूसरी जीवरूप प्रकृति को पराजानो जिसने इस जगत को धारन कर रक्खा है ।

(६) सब जीवों की उत्पत्ति इनहीं दोनो प्रकृतियों से होती है में तो सम्पूर्ण जगत का उतपन्न करने वाला और पालन करने वाला हूं ।

(७) हे धनंजय मेरे सिवाय और कोइ दूसरा इस जगत का स्वामी

(१) स्वभाव, गुण, माया,

नहीं है और सब जीव और सब वस्तु मुझ में मणियों के दाने की नाई पिरोये हुये हैं ।

(८) हे कुन्ती पुत्र जल में जो रस है सो मैं हूं सूर्य चन्द्रमा मे प्रकाश मैं हूं वेदों में ओंकार में हूं आकाश में शब्द मैं हूं और मनुष्यों में पुरुषार्थ मै हूं ।

(९) भूमी में गंध मै हूं अग्नि में तेज मैं हूं सबजीवों में जिंदगी मैं हूं और तपस्वी में हूं ।

(१०) हे अर्जुन सब जीवों का सनातन बीज मैं हूं बुद्धिमानो की बुद्धि में हूं और तेजस्वियों का तेज मै हूं ।

(११) काम और राग[1] से रहित जो बलवान उसमें बल मैं हूं और धर्मिष्टों का काम अर्थात इच्छा मैं हू।

(१२) सतोगुण रजोगुण और तमोगुण भाव जो जढ़ और चैतन्य में वर्तमान है सो मुझ ही से उत्पन्न हुआ है और मुझ ही में है किन्तु मैं उन में नहीं हूँ।

(१३) इन तीनों गुणों से यह सम्पूर्ण जगत मोहित हो रहा है इस लिये मुझ को जो मैं इन से अलग हूँ नहीं जानता है।

(१४) यह त्रिगुणात्मक है विमाया का तरना बहुत कठिन है इस से वही लोग तरते हैं जो केवल मुझ ही को भजते हैं।

(१) कामदेव (२) क्रोध

(१५) जो नीच पुरुष है वह मुझ को नहीं भजते क्योंकि मूढ पापियों का ज्ञान हमारी माया करके नष्ट होगये,या है इस कारण से आसूरी भाव को प्राप्त हुए हैं।

(१६) हे अर्जुन चार तरह के मनुष्य मुझको भजते हैं एकतो दुखी जैसे द्रोपदी दूसरा मतलबी जैसे ध्रुव तीसरा जिज्ञासु जैसे उचब चौथा ज्ञानी जैसा सूकदेव।

(१७) उनचारों में से ज्ञानी श्रेष्ट है क्योंकि वह सदा मुझको स्मर्ण किया करता है और सबमें उसको एक ईश्वर ही भाव रहताहै इसलिये वह मुझको अत्यन्त प्यारा है और मैं भी उसको अत्यन्त प्यारा हूं।

(१८) यद्यपि ये तीनो भक्त भी उदार हैं तथा विज्ञानी तो मेरा

आत्माही है यह मेरी समझ है क्योंकि वह सदा मेरे को स्मरण करता हुआ मुझ ही में रहता है जो हम से बढकर कोइ दूसरी उत्तमगतिनहींहै।

(१९) बहुत जन्म के बाद ज्ञानी लोग मुझको विश्वरूप समझ कर भजते हैं अर्थात ऐसा समझते हैं कि यह सब जगत ईश्वर रूप है इस जगत से भिन्न दूसरा कोई ईश्वर नहीं है अर्थात यह जगतही ईश्वर है ऐसे महातमा बहुत दुर्लभ हैं।

(२०) जिसका ज्ञान कामना से नष्ट होगया है वह दूसरे २ देवता को भजते हैं और अपने स्वभाव ही अपने मनोर्थ का पूर्ण करने के लिये नाना कर्म के आसरे होते हैं।

(२१) जो जो भक्त श्रद्धा करके जिस जिस देवताका पूजा करते हैं उसकी श्रद्धा को मैंही अचल करता हूं।

(२२) वह उस श्रद्धा से उस इष्टदेवता को आराधन करताहै परन्तु उसकी कामना को भी मैंही पूरा करता हूं।

(२३) प्ररन्तु उन अल्पबुद्धि वालोंका फल नाशवान होता है देवता के पूजनेवाले देवता को प्राप्त होतेहैं और मेरे भक्त मुझको प्राप्त होतेहैं।

(२४) मूर्खलोग मुझ निराकार को मूर्तिमान मानते हैं और मेरे परम उत्तम निरविकार भाव को नहीं जानते हैं।

(२५) मुझको सबकोई नहीं जानता हैं क्योंकि योगमायासे मैं ढका रहताहूं इसलिये मूढ़लोगमुझे अजन्मा निरविकारको नहीं जानते हैं।

(२६) हे अर्जुन भूत भविष्य और वर्तमान के जीवों को मैं जानता हूं परन्तु मुझको कोई नहीं जानता है।

(२७) हे अर्जुन इस सृष्टि मे इच्छा और द्वेष से सब जीव मोह को प्राप्त हैं।

(२८) पुण्यकर्म से जिसका पाप नष्ट होगया है वह राग दुःखरूपी मोह से छूटकर दृढ़ होकर मुझको भजता है।

(२९) जो मेरे आश्रयहो बुढ़ापा और मृत्यु से छूटने के वास्ते यत्न करता है वह सब जीवों को जानता है और संपूर्ण कर्मों को जानता है।

(३०) जो मुझको जड़ अर्थात निर्जीव पदार्थों में और चैतान्य देह

शारीयों में मानता है और सबका साक्षी समझता है उसीको मैं मरन काल में याद आता हूं ।

आठवां अध्याय दिव्य पुरुष की प्राप्ती महापुरुष योगो नाम ।

(१) अर्जुन ने कहा कि हे भगवान ब्रह्म किस को कहते हैं अध्यात्मिक किस को कहते हैं कर्म किसको कहते हैं अधिभूत किस को कहते हैं अधि दैविक किसको कहते हैं ।

(२) हे मधुसूदन इस देह में आधियज्ञ कौन है और किस तरह है

और आत्मसंयमी मरण काल में आपको किस तरह जानता है याने कैसे उसको आप का याद आता है।

(३) भगवान ने कहा कि जिसका नाश नहीं उसको ब्रह्म कहते है जीवों को अध्यात्म कहते हैं और जिससे जीवों की उत्पति होती है उसको कर्म कहते हैं।

(४) हे देहधारियों में श्रेष्ठ अर्जुन नाशवान पदार्थ को आधिभूत कहते हैं और इस देह के स्वामी को आधिदेव कहते हैं और अन्तरजामी आपी जग मे हूं।

(५) अन्त काल में जो मुझको स्मरण करता है और शरीर त्यागता है वह मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है इसमें कुछ संदेह नहीं।

(६) हे कुन्तिपुत्र जो पुरुष जिस वस्तु को चितवन करता हुआ शरीर छोड़ता है वह पुरुष उसी वस्तु में जाकर जन्म लेता है।

(७) इस लिये तुम मुझको सब काल में स्मरण किया करो और मेरे मन बुद्धि को अर्पण कर युद्ध करो तो तुम निःसंदेह मुझको पाओगे।

(८) हे अर्जुन ईश्वर को सदा चितवन करने से प्राणी ईश्वरही हो जाता है और चित्त को सदा रोकते रहने से रुक जाता है।

(९) जो ऐसा समझ कर स्मरण करता है कि ईश्वर प्राचीन कवि हैं और अत्यन्त सूक्ष्म है सम्पूर्ण जगत का धारन करने वाला है कि चितवन में नहीं आता और सूर्य्य के समान प्रकाश है और अंधकार से परे हैं।

(१०) और अन्तकाल में मन स्थिर करके योग बल से प्राणको

दोनों भौंहों के बीच भले प्रकार से टिका के भक्ति के साथ मुझको याद करता है सो दिव्य पुरुष को पाता है।

(११) वेद के जानने वाले जिसको अविनाशी कहते हैं और वैराग्य वान सन्यासी जिसमें प्रवेश करते हैं और जिसके लिये ब्रह्मचारी ब्रह्म चर्य धारण करते हैं सो तुमसे संक्षेप करके कहता हूं।

(१२) इन्द्रिय द्वारको बंदकर मनको हृदय मेंटिका प्राण को मूर्धा में रख योगाभ्यास करता हुआ परमगति को प्राप्त होता है।

(१३) जो ॐ कार को जपता हुआ मुझको याद करता हुआ शरीर को छोड़ता है सो परमगति को पाता है।

(१४) हे अर्जुन जो एकाग्रचित्त करके प्रति दिन केवल मेराही स्मरण करता है उस योगी को मैं सुलभ हूं।

(१५) महात्मा लोग मुझको प्राप्त होकर फिर जन्मको नहीं पाते हैं क्योंकि परम सिद्धि को पाये हुये जन्म जो दुख का खानि है और अनित्य है तिसको नहीं पाते।

(१६) हे अर्जुन ब्रह्मलोक को भी प्राप्त होने से प्राणी का जन्म मरन नहीं छूटता केवल हमारे को प्राप्त होने से ही छूटता है।

(१७) मनुष्य के हजार युगका ब्रह्माका एक दिन होता है और हजार युगकी एक रात्री होती है।

(१८) ब्रह्मा का जब दिन निकलता है तब सब जीव अपनी व्यक्त

अवस्था से जन्म लेते हैं और जब रात होती है तब अपनी उसी अवस्था में कि जहां से जन्म लियाथा लीन होजाते हैं।

(१९) हे अर्जुन यह संसार जीवका स्थान है वही जीव बारम्बार दिन में जन्म लेतेहैं और रात में लै होजाते हैं।

(२०) भगवान कहते हैं कि हे अर्जुन ब्रह्मा की रात्री में जो सब जीव लै होजाते हैं उसको मुक्ति मत मानो क्योंकि वह तो दिन होने से फिर जन्म लेते हैं परन्तु उस पद को मानो जिसमें सबजीवोंके जन्म लेने से भी जन्म न हो और सबके नाश होने से नाश भी न हो।

(२१) जिस पद में कभी जन्म नहीं होता उसी पद का कभी नाश

भी नहीं होता और उसीको परमपद कहतेहैं और वही मेरा परम धाम है।जिसके प्राप्त करने से प्राणी फिर आवागमनं में नहीं पड़ता ।

(२२) हे अर्जुन वह पुरुष जो सबसे परे हैं सो केवल उसीकी भक्ति करने से प्राप्त होता है और सब जीव उसीमें स्थित हैं और उसीने इस जगत को पसारा है।

(२३) जिसकाल में योगी लोग शरीर छोड़ने से जन्म पातेहैं और जिस काल में शरीर छोड़ने से जन्म नहीं पाते हैं सो मैं तुमसे कहूंगा।

(२४) जब सूर्य नारायण छःमहीने उत्तरायण रहते हैं तब दिन को शुक्लपक्ष में शरीर छोड़ने से योगी लोगों का जन्म नहीं होता।

(२५) जब सूर्यनारायण छःमहीने दक्षिणायन रहते हैं तब रात्रि को कृष्णपक्ष में शरीर छोड़ने से योगी लोगों को जन्म लेनापड़ताहै ।

(२६) शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष की गति दोनो अनादि है किन्तु शुक्लपक्ष वाले नहीं जन्मते और कृष्णपक्षवाले जन्म लेते हैं ।

(२७) हे अर्जुन परन्तु कोई कोई योगी इन दोनो गतियोंको जानते हुये भी मोहको नहीं प्राप्त होते इसलिये तुम सदा योगका अभ्यास करो ।

(२८) वेद पढने का फल यज्ञ करने का फल तप करने का फल दान करने का फल पुण्यका फल यद्यपि योगी जानता है तौ भी इस लालच में नहीं पड़कर आदि परमस्थान ही को प्राप्त करता है ।

राज विद्याराज गुह्य योगो नाम नवम अध्याय ।

(१) भगवानने कहा कि हम तुमसे ज्ञान विज्ञान सहित अत्यन्त गुप्त बात कहेंगे जिस से तुम अशुभ से छूटोगे क्योंकि तुम निन्दा रहित हो।

(२) यह सब विद्याओं में राजा है और गुप्त बातों में राजा है और पवित्र है उत्तम है शीघ्र फल देने वाला है धर्म इसका नाश नहीं है। और खुशी से करने योग्य है।

(३) हे अर्जुन जो इस धर्म पर विश्वास नहीं करता है वह मुझ को नहीं प्राप्त करके मृत्यु रूप संसार में भ्रमता है।

(४) इस सम्पूर्ण जगत को मैंने अपने निरंकार रूप से फैलाया है और इसके सब जीव मुझ में हैं पर मैं उन में नहीं हूं।

(५) मेरे इस ईश्वरत्त्व को देखो कि नये सब जीव मुझ में है और न मैं इन जीवों में हूं तौ भी मेरे ही आत्मा से सब का धर्म्म और पालन होता है।

(६) जिस तरह वायु आकाश में सर्वत्र स्थित है परन्तु आकाश से अलग है उसी तरह सब जीव मुझ में स्थित हैं परन्तु मुझसे अलग है।

(७) हे कुन्तिपुत्र प्रलय में सब जीव हमारी माया याने प्रकृति में लीन होजाते हैं और सृष्टिके उत्पत्ति काल में मैं फिर उन्हीं सब जीवो को सिरज देताहूं।

(८) मैं अपने स्वभाव से जिस के बस में सबजीव हैं उनको बारम्बार उत्पन्न करता हूं।

(९) हे अर्जुन यह कर्म मुझको बंधन में नहीं डालता क्योंकि मैं इस कर्म से उदास रहता हूं और कभी इसमें लिप्त नहीं होता अर्थात इस जगत के रचने से न मुझको हर्ष होता है न विषाद होता है।

(१०) हे कुन्ति पुत्र मेरा स्वभाव स्वतंत्र है वही चराचर रुप जगत को उत्पन्न करता है इसी लिये यह जगत वारम्बार उपजता है विनाश होता है।

(११) मूढ लोग मेरे मनुष्य शरीर को अनादर करते हैं और मैं जो सब जीवों का ईश्वर हूं तिस भाव को और मेरे श्रेष्ठ भाव को नहीं जानते

(१२) निषफल है आशा निषफल है कर्म निषफल है ज्ञान जो वि-

क्षिप्त चित्त राक्षसी और आसुरी स्वभाव को धारन करते हैं मोहनी माया के वश होकर ।

(१३) हे अर्जुन महात्मा लोग केवल मेरे ही में चित्त लगाये हुये दैवी स्वभाव से पंच महातत्वों से भी आदि और विकार रहित मुझको जानकर भजते हैं ।

(१४) और सदा मेरा यश कीर्तन करतेहैं मेरी उपासना करतेहैं और मेरेभक्त मुझको नमस्कार करते हैं और दृढ़ होकर मेरेलिये यत्न करतेहैं ।

(१५) कोई ज्ञान से मुझको पूजता हुआ मेरा ध्यान करता है कोई मुझको एकता भाव से स्मरण करताहै कोई द्वैत भाव से याद करता है और बहुत लोग बहुत प्रकार से भजते हैं ।

(१६) यज्ञका सब रूप मैंहीहूँ अर्थात क्रतु, यज्ञ, स्वधा, औषध, मंत्र आज्य, अग्नि, आहुत मैं हूँ।

(१७) इस जगत का पिता माता विधाता दादा मैं हूँ जानने योग्य पवित्र ॐकार मैं हूं ऋग वेद सामवेद यजुर्वेद मैं ही हूँ।

(१८) इस जगत की गति पालन करने वाला स्वामी साक्षी निवास स्थान, शरण, सुहृत, उतपत्ति, प्रलय, स्थान, निधान, अव्यय, और बीज मैं हूं।

(१९) हे अर्जुन गर्मी में मैंहीं तपाता हूं और बरसात में मैं ही बरसाता हूं और पानी को रोकता भी मैंहीं हूं जन्मता मैंही हूं और मरता भी मैंही हूं सत और असत मैं ही हूं।

(२०) तीन वेद के जानने वाले अमृत पान करने वाले पापरहित हो यज्ञ से मेरा सकाम पूजन करके मुझसे स्वर्ग चाहते हैं सो स्वर्ग में जाकर देवताओं के भोग भोगते हैं।

(२१) परन्तु जब स्वर्ग का पुण्यक्षीन होजाता है तब मनुष्य लोक में जन्म लेते हैं इसी तरह से वेदोक्त कर्म के करने वाले और भोगकी कामना वाले कभी आवागमन से छुट्टी नहीं पाते।

(२२) जो पुरुष केवल मेराही चितवन किया करता है और मेरी ही उपासना करता है उसको अप्राप्त वस्तु की प्राप्ती और प्राप्त वस्तु की रक्षा मैं हीं किया करता हूं।

(२३) हे कुन्ती-पुत्र जो भक्त श्रद्धा करके दूसरे देवता को भी पूजते हैं तो जानो कि हम ही को पूजते हैं ।

(२४) क्यों कि सब यज्ञों का भोक्ता और स्वामी मैं ही हूं किन्तु मेरे तत्व याने असलियत को वे नहीं जानते इसीसे संसारमें गिरते हैं ।

(२५) देवता के पूजने वाले देवता को प्राप्त होते हैं पित्र के पूजने वाले पित्र को प्राप्त होते हैं भूत के पूजने वाले भूतको प्राप्त होतेहैं और मेरे पूजने वाले मुझको प्राप्त होते हैं ।

(२६) मेरे भक्त जो शुद्ध मनसे पत्र पुष्प फल जल मेरे अर्पण करते हैं उस भक्त की उस अर्पित वस्तु को मैं ग्रहण करता हूं ।

(२७) हे कुन्ति पुत्र इसलिये जो करो जो भोजन करो जो होम करो जो दान करो जो तप करो सो सब मेरे अर्पण कर दो।

(२८) इस प्रकार से कर्मों का जो शुभा शुभ फल तिस से तुम मुक्त होगे परन्तु जब तुम सन्यास को धारण करोगे तब तुम सब बन्धन से छूट मेरे स्वरूप में आ मिलो गे।

(२९) सब जीव हमारे निकट बराबर हैं न कोई मेरा मित्र है और न कोई मेरा शत्रुहै किन्तु जो मुझको भक्ति करके भजता है सो मुझ में है और मैं उस में हूं।

(३०) यदि कोई दुराचारी भी हो किन्तु केवल मुझ ही को भजता होतो उस को साधु मानो क्योंकि उसका निश्चे अच्छा है।

(३१) धर्मात्मा जल्दी शांति को पाता है हे कुन्ति पुत्र मेरे भक्त का कभी नाश नहीं होता इसको निश्चै जानो।

(३२) जो अत्यन्त नीच कुल में जन्म लिये हैं वहभी मेरा आसरा करनेसे परम भक्ती पाते हैं चाहै वे स्त्री हों चाहे शुद्र हों चाहे वैश्यहों।

(३३) पवित्र कुल वाले जैसे ब्राह्मण और क्षत्रियों में राजर्षि लोग इस दुख रूप संसार में पड़कर यदि मुझको भज कर उत्तम गति को लाभ करैं तो क्या कहना है।

(३४) इसलिये हे अर्जुन तुम मेरे ही में मन लगाओ मेरे ही भक्त हो और मेरीही पूजा करो मुझको नमस्कार करो इसतरह से मेरे में मन लगाने से मेरी ही आसा भरोसा करने से तुम मुझ ही को पाओगे।

॥ विभूति वरनन विभूति योग नाम दशवां अध्याय ॥

(१) हे अर्जुन फिर मेरी बात सुनो जो तुमको परम प्रिय होगा क्योंकि मैं तुम्हारे हित के लिये कहता हूँ।

(२) मेरे प्रभाव को देवता लोग भी नहीं जानते और महर्षी भी नहीं जानते क्योंकि सब देवताओं और महर्षियों का आदि कारण मैं हूं।

(३) जो मुझको अजन्मा और अनादि और सबलोक का मालिक जानता है वह मनुष्यों में ज्ञानी होकर सब पापों से मुक्त होता है।

(४) मनुष्यों में बुद्धि, ज्ञान, मोह, से रहित, होना क्षमा, सत्य

इन्द्रियोंका रोकना; मनका रोकना,सुख, दुख,उत्पती प्रेम,डर, निडर, होना ये सब बातें मुझ से उतपन्न हुई हैं।

(५) जीवोंको न मारना, सबमें एक भाव, संतोष,तपदान,यश,अपयश और पृथक भाव इत्यादि जोसब जीवोंमें पाये जातेहैं सोहमसे उत्पन्नहुयेहैं॥

(६) प्रथम हमारे संकल्प से चार भाई सनकादि और सात ऋषि और मनु हमारे प्रभाव वाले उत्पन्न हुये कि उनसे ये सब प्रजा उत्पन्न हुई।

(७) जो मेरे इन बिभूतियों को और योग अर्थात रचना शक्ति को यथार्थ रूप से जानता है वह निःसन्देह अचलसे योग को लाभ करेगा।

(८) सबकी उत्पात्ति मैं ही हूँ और सबका प्रवृति करने वाला भी मैं ही हूँ ऐसा समझकर श्रद्धाकरके बुद्धिमान लोग मुझको भजते हैं।

(९) जो हमारे में चित्त लगाकर हमारे में प्राण प्रवेश करते हैं अथार्त समाधि लगाते हैं और वोध वास्ते आपस में मेरा नित्य कथन किया करते हैं वह सन्तोष को प्राप्तहुये आनन्द करते हैं ।

(१०) जो मुझको प्रीति पूर्वक भजता है और सदा इन्द्रियों को संयम में रखताहै उसी को मैं वह ज्ञान देताहूं जिससे वह मुझको प्राप्तहोताहै ।

(११) उस के हित के वास्ते उसके अज्ञान से जो अंधकार उत्पन्न होता है तिसको मैं उसके हृदयमें ज्ञान रूप प्रकाश देकर नाश कर देताहूं।

(१२) अर्जुन ने कहा हे भगवान आप तो परब्रह्म हैं परम धाम हैं परम पवित्र हैं परम पुरुषहैं आपकी किसी अवस्थामें क्षय नहींहैं दिव्य हैं आदि हैं अजन्मा हैं व्यापक हैं ।

(१३) सब ऋषि जैसे नारद, असित, देवल, व्यास आपको ऐसाही कहते हैं और आपने भी हमसे ऐसा ही कहा है।

(१४) हे केशव जो आप मुझसे कहते हैं सोसब मैं सत्य मानता हूँ क्योंकि आपको न देवता जानते हैं न राक्षस जानते हैं।

(१५) हे पुरुषोत्तम्, जीवों के स्वामी, हे देवों के देव, हे जगत के पति आप को सिवाय आप के दूसरा कोई नहीं जान सकता है।

(१६) आप अपनी विभूति को आपही कहने को समर्थ हैं जिस विभूति करके इस जगत को घेरे हुए आप स्थित हैं।

(१७) हे योगेश्वर मैं किस प्रकार आपको सदा चिंतवन करूं और आपको कैसे जानूं और किन किन पदार्थों में आप को मानूं।

(१८) हे प्रभो आप अपने योग को और ऐश्वर्य को फिर कथन कीजिये मुझको आपके अमृत रूपी बचन से तृप्ति नहीं होती है।

(१९) भगवान ने कहा कि हाँहम तुमसे अपनी मुख्य मुख्य दिव्य विभूतियां कहेंगे क्योंकि मेरे एश्वर्यका अंतनहीं है।

(२०) हे अर्जुन सब जीवों का आत्मा मैं हीं हूँ और सब जीवों का आदि मध्य और अन्त भी मैंहूँ।

(२१) बारहों आदित्य में बिष्णु मैं हूँ जोतियों में किरन वालासूर्य मैं हूँ वायु में मरीचि मैं हूँ नक्षत्रों में चन्द्रमा मैं हूँ।

(२२) वेदों में श्याम वेद मै हूँ देवतावों में इन्द्र मैं हूँ इन्द्रियोंमें मन मै हूँ जीवों में चैतन्यता शक्ति मैं हूँ।

(२३) रुद्रों में शंकर मैंहूं यक्ष राक्षसोंमें कुबेर मैंहूं व सुन्य में अग्नि मै हूँ शिखरों में सुमेर मैंहूं ।

(२४) पुरोहितों में वृहस्पति मैं हूं और सैना के सरदारों में स्वामि कार्तिक मैंहूं स्थिर जलोंमें समुद्र मैं हूं ।

(२५) महर्षियों में भृगु मैंहूं वर्णों में ओंकार मैं हूं जापियों में जप मैंहूं स्थावरों में हिमालय मैं हूँ ।

(२६) वृक्षों में पीपल मैंहूं देव ऋषियों में नारद मैं हूं गन्धर्वों में चित्ररथ मैं हूं सिद्धां में कपिल देव मैं हूं ।

(२७) घोड़ों में उच्चैश्रवा मैं हूं जो समुद्र मथन से निकला है हाथियों में एरावत मैंहूं मनुष्यों में राजा मैं हूं ।

(२८) हथियारों में बज्र मैंहूँ गायो में कामधेनु मैंहूँ प्रजाकी उत्पति के कारन से कन्दर्प मैं हूँ सापोंमें वासुकि मैंहूँ ।

(२९) नागों में शेष मैंहूँ जलचरों में वरुण मैं हूँ पित्रों मैं अर्यमा मैं हूँ दंड देनेवालों में यमराज मैं हूँ ।

(३०) दैत्यों में प्रहलाद मैंहूँ संख्या वाले पदार्थों में काल मैंहूँ चौपायों में सिंह मैंहूँ पक्षियों में गरुड़ मैंहूँ ।

(३१) चलनेवासों में वायु मैंहूँ शस्त्रधारियों में रामचन्द्र मैंहूँ मछलियों मैं घड़ियाल मैंहूँ नदियों में गंगा मैंहूँ ।

(३२) हे अर्जुन जगत का आदि मध्य और अन्त में हूँ विद्यायों में आत्म विद्या मैंहूँ और वादियों में वाद मैं हूँ ।

(३३) अक्षरोंमें अकार मैंहूं समासोंमें द्वन्द समास मैंहूं अक्षय काल भी मैं हूं पालने वाला मैंहूं ।

(३४) मृत्यु जोसबको हरनकरने वालीहै सोमैंहूं और होने वालोंमें उत्पति मैंहूं स्त्रियोंमें जस, धन, वानी, स्मरण, शक्ति, समझ, धीर्ज, क्षमा मैंहूं ।

(३५) सामवेद की वृहत्सामऋचा मैंहूं छन्दों में गायत्री मैंहूं महीनों में अगहन मैंहूं ऋतुओं में वसन्त मैं हूं ।

(३६) छल करने वालो में जुआ मैंहूं तेजस्वीओं में तेज मैंहूं जीतने वालों में जय मैंहूं सत्तवादियों में सत्य मैंहूं गुणों में सतोगुण मैंहूं ।

(३७) वृष्णि वंसमें वासुदेव मैंहूं पांडवों में अर्जुन मैंहूं मुनियों में व्यास मैंहूं कवियों में शुक्राचार्य मैंहूं ।

(३८) प्रजावस करनेवालेमें दण्ड मैंहूँ राजकरने वालोंकी नीति मैंहूँ गुप्त पदार्थों में मौन मैं हूँ ज्ञानियों में आत्मज्ञान मैं हूँ ।

(३९) सब जीवों का जीव मैंहूँ और विना हमारे शक्ति के कोई चर या अचर नहीं रहसकता है ।

(४०) हे अर्जुन मेरे दिव्य विभूतियों का अन्त नहीं है इस लिये मैंने संक्षेप से वर्णन किया ।

(४१) जो जो पदार्थ ऐश्वर्य युक्तहैं सोसबहमारे अंशसे उत्पन्न जानो॥

(४२) हे अर्जुन इस सब पृथक पृथकज्ञान से तुमको क्या मतलब है तुम ऐसा समझो कि इस सम्पूर्ण जगतको एक अंश से मैं ही धारन किये हुए स्थित हूँ ।

विश्वरूप दर्शनोनामे ग्यारहवा अध्याय

(१) अर्जुन ने कहा कि हे भगवान हमारे पर अनुग्रह कर के अत्यन्त गुप्त जो आत्मज्ञान आपने उपदेश किया तिस्से मेरा मोह जाता रहा ।

(२) हे भगवान हमने आप से जीवों की उत्पति और लय सुनी और आपका नाश रहित माहात्म भी सुनी ।

(३) हे परमेश्वर जैसा आपने आत्मा का बर्णन किया वैसाही अब मैं आपका एश्वर्य युक्त रूप देखा चाहता हूँ ।

(४) हे योगेश्वर यदि मैं आप के रूप देखने को समर्थ होऊं तो आप अपना दिव्य रूप देखाइये ।

(५) भगवान ने कहा हे अर्जुन मेरे सैकड़ों हजारों प्रकार के दिव्य रूपको देख इसमें नाना प्रकारका रंग है और नाना प्रकार की आकृतिहै ।

(६) हे अर्जुन बारहों सूर्य्य को आठों वसुओं को ग्यारहों रुद्रों को दोनो आश्विनी कुमारों को उनचास मारुत गणों को देख और बहुत आश्चर्य रूप जो किसी ने नहीं देखा है उसकोभी देख ।

(७) हे अर्जुन मेरे इसी शरीर में आजतू चराचर जगत को देख ले जिसमें तुझको फिर किसी वस्तु को देखने को इच्छा नहीं रहे ।

(८) यदि तूं इन आंखोंसे मेरे रूपको नहीं देख सकता है तो ले मैं तुझको दिव्य दृष्टि देखता हूँ मेरे योग और ऐश्वर्य को देख।

(९) संजय ने राजा धृतराष्ट्र से कहा कि हे राजन इतना कहकर महा योगेश्वर हरिने फिर अपना परम ऐश्वर्य रूप अर्जुन को दिखाया।

(१०) सो रूप कैसा है कि जिसमें अनेक मुख हैं अनेक नेत्र है अनेक अद्भुत दर्शन है अनेक दिव्यगहने हैं अनेक दिव्य हथियार उठाए हुये हैं।

(११) दिव्य सुगंधित माला को धारन किये हैं दिव्यचन्दन का लेप किये हैं सब आश्चर्य रूप और प्रकाश रूप और अनन्त रूप हैं और सब ओर मुख हैं।

(१२) यदि हजार सूर्य्य आकाश में एकही उदय हों तो भी बार भगवान के चमक के बराबर चमक कहां होसकती है ।

(१३) उस विश्वरूप भगवान के शरीर में जो देवताओं के देवता हैं उसकाल में अर्जुन अनेक प्रकार का पृथक पृथक जगत देखताभया ।

(१४) अर्जुन विस्मय को प्राप्त होगया और उसके रोम खड़े होगये तब हाथ जोड़ भगवान को सिर झुका कर प्रणाम किया और बोला ।

(१५) कि हे देव आप के शरीर में सब देवतों को देखता हूँ और और बहुतसे जीवों को पाताहूँ और आपके नाभि कमल पर ब्रह्मा को बैठा देखता हूँ और सब ऋषिओं को और बड़े बड़े नागों को देखताहूँ।

(१६) हे विश्वेश्वर विश्वरूप आपका न आदि देख पड़ता है न मध्य देखपड़ता है न अन्त देख पड़ता है सब तरह से आप अनन्तरूप हैं आपको अनेक हाथ हैं अनेक पेट हैं अनेक मुख और नेत्र हैं।

(१७) आपको सब ओर से मुकुट गदा चक्र वाला देखता हूँ आप तेज के राशि हैं आपको सब ओर प्रकाश है आपको देखना कठिन है आपकी चमक अग्नि और सूर्य्य की नाईं है।

(१८) आप परब्रह्म हो आप जानने के योग हो और आप इस संसार को अपार हो आप विकार रहित हो और सनातनधर्म के पालन करने वाले हो और आप सनातन पुरुष हो ऐसा मेरामत है।

(१९) आपका आदि मध्य अन्तनहीं है और आप बड़े पराक्रमी हैं अनन्त भुजा हैं आपकी चन्द्र सूर्य्य नेत्र हैं आपके मुँहमें अग्नि की ज्वाला है और आपही अपने तेज से इस जगत को तप्त करते हैं ।

(२०) हे भगवान आकाश पाताल और मृत्यलोक और दसों दिशा सब आप से घेराहुआ है और आप के इस अद्भुत रूप को देख तीनो लोक कांपते हैं

(२१) देवता सब आपही में प्रवेश करते हैं और जो डरते हैं सो हाथ जोड़े आपकी स्तुति करते हैं महर्षि लोग और सिद्ध लोगभी आप की स्तुति कररहे हैं ।

(२२) ग्यारह रुद्र वारह सूर्य्य आठ बसु और साध्य देवता विश्वेदेवा अश्वनी कुमार और उनचास मारुत और पितर और गंधर्व हुहु हाहा यक्षकुवेर असुर सिद्ध सब आप के रूप को घबड़ाये हुए देखरहे हैं।

(२३) हे प्रभु आप के विशाल रूप को देखकर सबलोग घबड़ाये हैं और मैंभी आपके बहुत भुजा जांघ गोड़ पेट और बिकरालडाढ़ वाले रूपको देखकर डरता हूँ।

(२४) हे विष्णु आपको रूपजो आकाश में टिका हुआ है और नाना रंग का है और मुहखुला है और बड़े बड़े नेत्र चमक रहे हैं तिस को देख मेरा जी घबड़ा रहा है और धीर्य धरा नहीजाता है।

(२५) हे देवों के देव हे जगत के निवास स्थान आपके मुखमें प्रलय कालका अग्नि और भयंकर दात को देख मेरा जी थिर नहीं है दिशाको भी भूलगया हूँ मेरा पुरुषार्थ चला गया आपजल्दी प्रसन्न होइये।

(२६) धृतराष्ट्र के सब पुत्र राजाओं के सहित और भीष्म पितामह द्रोणाचार्य और कर्ण हमारे बड़े बड़े योद्धाओ के साथ तुह्मारे ही मुख में प्रवेशकरता है।

(२७) आपके मुखमें दौड़े हुये चले जाते हैं कोई दांत में लटके हैं जिन के शिर कटे हैं।

(२८) जिस तरह नदी समुद्र ही को धावती है और उसमें प्रवेश करती है उसी तरह राजा लोग सब ओर से आप के मुख में दौड़े चले जाते हैं।

(२९) जिस तरह बड़े बड़े पतिंगे प्रज्वलित अग्नि में गिरते हैं उसी तरह बड़े बड़े बीर आप के कराल मुख में मरने के वास्ते जल्दी जल्दी घुसे जाते हैं।

(३०) आप अपने अग्नि वाले मुख से सबलोगों को भक्षण कररहे हैं हे विष्णु आप अपने तेज से सबको जला रहे हैं।

(३१) हे भगवान आप उग्र रूप कौन हैं सो मुझ से कहिये मैं आप को नमस्कार करता हूं हे देववर प्रसन्न हुजिये आपके आद्य रूप से इस बातको जाना चाहता हूं और आपका क्या काम है सो मैं नहीं जानता हूं।

(३२) भगवानने कहा कि मैं लोकों का नाश करने वाला काल हूं और इन लोगों को ग्रसनेके वास्ते उपस्थित हुआ हूं बिना तेरी सहायता के इन सब योद्धाओं और दोनों सेनाओं का संहार करूंगा।

(३३) इस लिये तुझसे कहताहूं कि उठ और यशलेश त्रुओंका नाशकर राजको भोग इन सबकोंमैं पहिलेही मार चुकाहूं तू केवल निमित्त मात्रहो।

(३४) द्रोण, भीष्म, जयद्रथ, कर्ण, और बड़ बड़े योद्धाओंको मैं मार चुका हूं तुम इनको मारो डरो मत इनसे लडो रण में शत्रुओंको जीतोगे।

(३५) संजय ने धृतराष्ट्र से कहा कि अर्जुन भगवान का यह बचन सुन दोनों हाथों को जोड़ कांपता हुआ नमस्कार करके बोला और फिर उसने डर कर गद् गद् कंठ हो कृष्ण भगवान को प्रणाम किया।

(३६) अर्जुन ने कहा कि हे भगवान आपके स्वभाव में सब जगत प्रसन्न हैं केवल राक्षस मारे डरके दशोंदिशाओंमें भाग रहेहैं और सिद्धि लोग आपको नमस्कार कर रहे हैं जैसा कि चाहिये।

(३७) हे प्रभु आप महात्मा हो, अनन्त हो, हे देवोंके देव, हेजगत के आधार, आपको कैसे लोग नमस्कार नहीं करें आप ब्रह्मा से भी बड़े हैं और आप आदिकरता हैं आप सत्य असत्य से परे जो परम अविनाशी पुरुष सो आप हैं।

(३८) आप आदि देव हैं पुरान पुरुष हैं आप जगत के निधान हैं आप सबके जानने वाले और सबसे जाननेके अयोग्यहैं आपका धाम सबसे पर है हे अनन्त रूप आपही से यह सब जगत पसारा गया है।

(३९) वायु, यमराज, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, ब्रह्मा और ब्रह्मा के भी परदादा आप हैं इसलिये आपको बारम्बार नमस्कार हजारों हजार नमस्कार फिर फिर नमस्कार है।

(४०) आपको सामने से नमस्कार पीछे से नमस्कार सब ओर से नमस्कार आप बड़े पराक्रमी हैं आपके बल पौरुषका अन्त नहीं है आप सब कुछ धारन किये हैं इसलिये सब कुछ आपही हैं।

(४१) आपको जो हमने सखा कहा यादव कहा कृष्ण कहा सो आपके महिमा को नहीं जानता था इसलिये भूल से कहा और प्रीत से भी कहा।

(४२) खेलते, खाते, सोते, बैठते, चाहे अकेले या औरों के सामने जो

हमने आपका असत्कार किया तिसको आप क्षमा कीजिये आप अद्भुत हैं और अप्रमाण हैं।

(४३) इस चराचर लोक के आप पिता हो, पूज्य हो, गुरूओं में भी श्रेष्ठ हो, आपके समान दूसरा और कोई नहीं है, और दूसरा कहां से होगा आप तीनों लोक में अद्वैत हो।

(४४) तिसलिये आपको प्रसन्न करता हूं आप ईश्वर हो और स्तुति करने योग्यहो मैं शरीर गिराकर प्रणाम करता हूँ जिस तरह पिता पुत्र का, मित्र मित्रका, पुरुष स्त्रीका, अपराध क्षमा करता हैं उसी तरह आप भी मेरा अपराध क्षमा कीजिये।

(४५) हे देवों के देव हेजगत निवास-आप अब अपना पहिला रूप

देखाइये और प्रसन्न हूजिये यह रूप मैंने पहिले नहीं देखा था इस्से हूं प्रसन्न परन्तु बड़ा डर लगता है और मन घबड़ाता है।

(४६) हे सहस्र बाहु, हे विश्व मूर्ति, किरीट मुकुट वाला गदावाला चक्रवाला आपका चतुर्भुज रूप मैं देखा चाहता हूं सो आप देखाइये।

(४७) भगवान ने कहा हे अर्जुन मैंने प्रसन्न होकर अपने योग से तुझको यह विश्वरूप दिखाया इसका न आदि है न अन्त है इसको तुम्हारे सिवाय और किसी ने नहीं देखा है।

(४८) हे अर्जुन इस मृत्युलोक में सिवाय तेरे और कोई मेरे रूप को नहीं देख सकता न वेदसेन यज्ञ से न दान से न कर्म से न तप से।

(४९) मेरे इस घोर रूप को देख कर तू न डर और मूढ़ मत हो भय दूर करके प्रीत कर और अब मेरे पहिले रूप को फिर देख ।

(५०) संजय ने राजा धृतराष्ट्र से कहा कि हे राजन भगवानने ऐसा कह कर अपने पूर्व रुप को दिखाया और शान्तरूप हो अर्जुन को दिलासा दिया।

(५१) अर्जुन ने भगवान से कहा कि हे जनार्दन आपके इस शान्त मनुष रूप को देखकर मैं प्रसन्न हुआ और सचेत हुआ ।

(५२) भगवान ने कहा कि हे अर्जुन यह रूप जो तुमने अभी देखा इस को देवता लोग भी देखने की इच्छा रखते हैं पर इसका देखना कठिन है ।

(५३) जैसा तुमने मुझको देखा है वैसा रूप कोई न वेद के पढने से, न तप से, न दान से, न यज्ञ से देख सकता है ।

(५४) हे अर्जुन ऐसा रूप मेरा केवल अनन्य भक्ति कर के और तत्वज्ञान कर के देखने और प्रवेश करने योग्य है।

(५५) हे अर्जुन जो मेरा भक्त मेरे अर्थ कर्म करताहै और मेरा ही भरोसा रखता है और किसी से संग नहीं रखता और किसी से बैर भी नहीं रखता है वही मुझको प्राप्त होता है।

भक्तिवर्णनभक्तियोगनाम बारहवां अध्याय

(१) अर्जुन ने पुछा हे भगवन जो आपकी भक्ति कर के सदा पूजता है सो अच्छा कि जो ज्ञान कर के आप को अविनाशि और अव्यक्त जानता है सो अच्छा।

(२) भगवान बोले जो बहुत श्रद्धा करके मेरे में मन को लगाये हुवे सदा मुझको याद करता है उसी को मैं अच्छा समझता हूं ।

(३) जो मुझको नाश रहित और अमूर्तिमान सर्व व्यापी अचिन्त्य हृदयनिवासी अचल और निश्चय वाला जानताहै सोमुझको प्राप्तकरताहै।

(४) और जो सब को एक समझता है और सब जीवों की भलाई चाहता है और सब इन्द्रियों को रोक कर मेरी उपासना करता है सो ही मुझ को प्राप्त हैं ।

(५) निरङ्कार ईश्वर की उपासना करने वाले को बहुत क्लेश होता है क्योंकि देहाभिमानी पुरुषों का चित्त निरङ्कार में बडे दुख से प्रवेश करता है ।

(६-७) जो सब कर्मों को मेरे में समर्पण कर के मेराही भरोसा करता हुआ एक ही तरह से मुझको ध्यान करता है और याद करता है।

और हे अर्जुनजो मेरे में चित्त लगाता है उसको मृत्यु रूपी संसार सागर से जल्दी उबार लेता हूं अर्थात् अमर कर देता हूं।

(८) मुझ ही में मन को लगा मुझ ही में बुद्धि को प्रवेश कर तो तू मुझ ही में निवास करेगा इसमें संशय नहीं।

(९) हे अर्जुन यदि तू मेरे में चित्त नहीं लगा सकता तो मेरे में चित्त लगाने का अभ्यास कर और मुझको प्राप्त करने की इच्छा कर।

(१०) और जो अभ्यास में भी असमर्थ है तो मेरे निमित्त कर्म कर

अर्थात ईश्वर के पूजन वास्ते पुष्प का तोड़लाना चन्दन घिसना पार्षद मलना इत्यादि कर्म किया कर।

(११) यदि यह भी नहीं कर सकता है तो योग के अश्रय हो जा और सब कर्मों के फल को त्यागदे और मनको बस कर।

(२१) अभ्यास से ज्ञान श्रेष्ठ है ज्ञान से ध्यान श्रेष्ठ है ध्यान से कर्म फल का त्याग श्रेष्ठ है और त्याग से शांति श्रेष्ठ है।

(१३) बड़ेसे द्वेष नहीं करना बराबरवालेसे मित्रता रखना और छोटों पर दया करना ममता और अहंकार को त्याग देना दुख और सुख को बराबर समझना और सबके अपराध को क्षमा करना।

(१४) जो योगी सदा संतुष्ट रहता है मन को रोके रहता है अपने

निश्चय को दृढ़ रखता है मन बुद्धि को मेरेमें अर्पण कर देताहै ऐसा भक्त मुझको बड़ा प्रिय है।

(१५) जो किसी जीव से दुखी नहीं होता है और जो किसी जीव को दुख नहीं देता है और हर्ष अमर्ष डर और व्याकुलता को जीत लिया है जिसने वह मुझको बड़ा प्रिय है।

(१६) बेपरवाह, पवित्र, चतुर, उदासीन, खेद रहित, जोसब कामोंका त्यागी है सो भक्त मुझको बड़ा प्यारा है।

(१७) जो न हर्ष करता है न विषाद करता है न सोचता है न मांगता है शुभ अशुभको त्याग दियाहै जिसने वह मुझकोबड़ाप्याराहै।

(१८) जो शत्रु और मित्र को बराबर समझता है मान अपमान को शीत उष्ण को सुख और दुख को बराबर समझता है सो मुझको बड़ा प्यारा है।

(१९) जो निन्दा स्तुत को बराबर समझता है मौन रहता है और जो मिले उसी में संतोष करता है घर नहीं बनाता है और स्थिर बुद्धि है जिसकी सो हमको बड़ा प्रिय है।

(२०) जो हमको बड़ा समझता है और श्रद्धा करके मेरे अमृत रूपी उपदेश को ग्रहण करता है सो हमको बड़ा प्यारा है।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञनिर्देशोनाम् तेरहवां अध्याय ।

(१) अर्जुन ने कहा हे केशव मैं प्रकृति पुरुष क्षेत्र क्षेत्रज्ञ और ज्ञान ज्ञेय के जानने की इच्छा रखता हूं (यह श्लोक व्यास कथित नहीं है)

(२) भगवान बोले हे अर्जुन इस शरीर को क्षेत्र कहते हैं और जो इस शरीर का स्वामी है अर्थात जिसको यह ज्ञान है के यह शरीर मेरा है सो क्षेत्रज्ञ हैं याने आत्मा को क्षेत्रज्ञ कहते हैं।

(३) हे अर्जुन सब शरीरों का आत्मा जो क्षेत्रज्ञ कहलाता है सो मैं हूं और इस शरीर और आत्मा को जानने ही का नाम ज्ञान है ऐसा मेरा मत है।

(४) यह शरीर क्या है कैसा है क्या विकार है और कहां से आया है और कैसा शक्तिवाला है सो सब हम संक्षेप से कहतेहैं तिसको सुनो।

(५) इसका कथन ऋषियों ने बहुत प्रकार से किया है वेदों ने भी इसको अलग अलग करके कहा है और ब्रह्मसूत्र में इसका निश्चय भले प्रकार से किया है।

(६) यह देह चौबीस तत्व से बना है अर्थात् पृथ्वी १ अग्नि २ जल ३ वायु ४ आकाश ५ मन ६ बुद्धि ७ चित्त ८ अहंकार ९ हाथ १० पांव ११ गुदा १२ इन्द्री १३ वाक १४ आंख १५ कान १६ नाक १७ जिव्हा १८ त्वचा १९ शब्द २० स्पर्श २१ रूप २२ रस २३ गन्ध २४।

(७) इच्छा याने किसी वस्तु को चाहना और द्वेष अर्थात किसी

वस्तु को नहीं चाहना सुख दुख और चेतना याने सब का ख्यालरखना जिस में कोई काम बिगड न जाय और धैर्य्य अर्थात् जब तक काम सिद्ध न हो तब तक उस को नही छोडना ये छ विकार इस शरीर में हैं।

(८) सन्मान नही चाहना घमण्ड नहीं करना किसी जीव को वध नहीं करना शांत स्वभाव से नम्र रहना गुरु को मानना पवित्र रहना स्थिर रहना और अपने देह को वश में रखना।

(९) इन्द्रियों के विषय से उदास रहना अहंकार नहीं करना जन्म मृत्यु बुढापा रोग और इनके दुख बराबर याद करना।

(१०) स्त्रीपुत्र गृहमें लिप्त नहीं रहना और परिवार के दुख सुख में दुखी सुखीनहींहोना अच्छे और बुरेके प्राप्तिमें चित्तको सावधानरखना।

(११) केवल मेरे ही में चित्त को लगाना और मेरी ही भक्ति करना ऐसे जगह रहना जहां चित्त प्रसन्न रहे और लोगों के पास न बैठना।

(१२) वेदांत का पढना तत्वज्ञान का अभ्यास करना इसी का नाम ज्ञान है और इसका उल्टा करना अज्ञान है।

(१३) अब वह बात करता हूं जो जानने योग्य है और जिसके जानने से अमर हो जाओगे वह यह है कि अनादिब्रह्म न सत्य है न असत्य है।

(१४) उसको सब तरफ हाथ हैं पांव हैं आंख हैं कान हैं मुख हैं सिर हैं और आप ही सब को घर कर बैठा है।

(१५) सब इन्द्रियों का प्रकाशक और सब इन्द्रियों से रहित और

सब से अलग और सब को धारण करने वाला सब गुण रहित और सब सुख का भोगने वाला है।

(१६) सब जीवों के भीतर बाहर है चर और अचर है और सूक्ष्म होने से जाना नहीं जाता है निकट भी है दूर भी है।

(१७) वह आत्मा पृथक पृथक नही है परन्तु सब जीवों में पृथक पृथक प्रतीति होता है और सब का पालक भी वही है नाशक भी वही है और उत्पन्न करने वाला भी वही है।

(१८) प्रकाश करने वाले जैसे सूर्य्य चन्द्रमा तिन का भी प्रकाश कहैं अंधकार से परे है ज्ञान स्वरूप है जानने योग्य है पर ज्ञान ही करके जाना जाता है और सब के हृदय में विराजता है।

(१९) ये शरीर आत्मा और इन का ज्ञान संक्षेप से मैंने वर्णन किया इस को मेरे भक्त जान कर मेरे भाव को प्राप्त होते हैं।

(२०) प्रकृति शक्ति पुरुष अर्थात् आत्मा दोनों अनादि हैं परन्तु विकार जितने हैं सो सब प्रकृति से उपजते हैं।

(२१) कार्य कारन और कर्तृत्व का हेतु प्रकृति है और सुख दुखके भोग का हेतु पुरुष है।

(२२) आत्मा शरीर के साथ रहने से प्रकृतिसे उत्पन्न जो सुख दुख है तिसको भोगता है। देवता मनुष्यों का जन्म गुणों के संग से है।

(२३) इस देह में जो आत्मा है सो सब से परे है और वही सब

(१) स्वभाव, गुन माया (२) बल जार देवी माया।

का देखने वाला साक्षी है और सब का अनुमान करने वाला है पालन पोषण करने वाला है सुख दुख का भोक्ता है वही महेश्वर है और वही परमात्मा है।

(२४) जो इस तरह से आत्मा को जानता है और प्रकृति याने शरीर को गुण के साथ मानता है सो किसी अवस्था में रहै पर उस का जन्म नहीं होता है।

(२५) कोइ इस आत्मा को आत्मा ही से ध्यान करके देखता है और कोई तत्व ज्ञान से कोइ योग से कोई कर्म से लाभ करता है।

(१) गवाही, शहादत (२) अटकल अन्दाज, कयास, तखमीना।

(२६) कोइ केवल गुरु से श्रवण करके उपासना करताहै और मृत्यु रूपी संसार से तर जाता है ।

(२७) और जो कुछ पदार्थ स्थावर जंगम उत्पन्न होता है सो प्रकृति पुरुष के संयोग से होता है ।

(२८) सब जीवों का नाश होते हुये भी जो आत्मा का नाश नहीं मानता सो ही ज्ञानी है।

(२९) जो ईश्वर को सब में बराबर स्थित जानताहै सो और आत्मा को आत्मा से नहीं मारता है सो परम गति पाता है ।

(३०) जो सब कर्मों को प्रकृति का किया समझता है और आत्मा को अकर्ता जानता है सो ही ज्ञानी है ।

(३१) जो पुरुष जीवों के पृथक भाव को एक समझता है और फिर उसी एक से अनेक रूप हुआ मानता है वह ब्रह्म को प्राप्त होता है।

(३२) हे कुन्ती पुत्र यह परमात्मा शरीर में रहते हुये भी अनादि निर्गुण और अव्यक्त होने के सबब से न कुछ करताहै और न किसी के बंधन में आता है।

(३३) जैसे आकाश सर्वत्र व्यापक है परन्तु सूक्ष्म होने के कारण किसी से लेपायमान नहीं होता उसी तरह आत्मा सब शरीर में रहता हुआ भी किसी से लेपायमान नहीं होता।

(३४) जैसे एक ही सूर्य सब जगत को प्रकाश करता है उसी तरह एकही आत्मा सब शरीरों को प्रकाशता है।

(३५) जो इस क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ को ज्ञान दृष्टि से देखता है और जीवों को सुभाव ही से मुक्त जानता है सो परमात्मा को प्राप्त होता है।

तीनो गुण वर्णन त्रिगुणविभाग योगनाम चौदहवां अध्याय।

(१) श्री भगवान ने कहा फिर मैं ज्ञानों में से जो उत्तम ज्ञान सो कहता हूं जिसको जान कर मुनि लोग परम सिद्धि को प्राप्त होते हैं।

(२) इस ज्ञान का आश्रय करने से मेरे धर्म को प्राप्त कर के न सृष्टिकाल में जन्म होगा न प्रलयकाल में मृत्यु होगी।

(३) मेरी माया मेरी योनि है उसमे मैं गर्भ धारण करता हूं और उसी से सब जीवों की उत्पत्ति होती है याने पुरुष प्रकृति से जगत की उत्पति होती है ।

(४) हे कुन्ती पुत्र चौरासी लक्ष योनियोंके जीव जो मूर्तिवान हैं तिन की योनि प्रकृति है और मैं उस योनि में वीर्य का डालने वाला पिताहूं ।

(५) सत्व रज तम ये तीनों गुण प्रकृति से उत्पन्न होतेहैं हे अर्जुन इस देह में निर्विकार देही को यही गुण बन्धन में डालता है ।

(६) हे अर्जुन सतोगुण निर्मल होने से सुखरूप और ज्ञानरूप हो कर आत्मा को बन्धन करता है ।

(७) रजोगुण इच्छा का उत्पन्न करने वाला है और इससे तृष्णा उपज कर जीव को कर्म बन्धन में डालती है।

(८) तमोगुण अज्ञानरूप होने से जीव को मोह कर के आलस और निद्रा में गिराता है।

(९) सतोगुण सुख चाहता है रजोगुण कर्म मै प्रवृत्त करता है और तमोगुण ज्ञान को ढक कर प्रमाद * उपजाता है।

(१०) रज और तम को दबाकर सत्व प्रगट होता है सत्व और तम को दबा कर रज प्रगट होता है सत्व और रज को दबा कर तम आता है।

(११) जब इस शरीर को सब इन्द्रियों में चैतन्यता प्रतीत हो और ज्ञान उदय हो तो जानो कि सतोगुण की वृद्धि है।

* पागलपन

(१२) जब लोभ इच्छा कर्मों का आरम्भ और अशान्ति हों तब रजोगुण की वृद्धि समझो।

(१३) जब अज्ञान आलस प्रमाद मोह प्राप्त हो तब तमोगुण का उदय जानों।

(१४) मरने के समय जब सतोगुण की वृद्धि रहती है तब मनुष्य उत्तम गति प्राप्त करता है।

(१५) रजो गुण में मरने से मनुष्य योनि में जन्म लेता है और तमो गुण में मरने से पशु पक्षियों की योनि में जन्मता है।

(१६) सतोगुण का फल सुख और ज्ञान, रजोगुण का दुख और तमो गुण का फल अज्ञान है।

(१७) सतोगुण से ज्ञान होता है, रजोगुण से लोभ होताहै,तमोगुण से प्रमाद याने बातों को भूल जाता है, मोह याने स्त्री पुत्रों में लिप्त होना अज्ञान याने मूर्खता होना इसी के कारण है।

(१८) सतोगुणी ऊपर को जाते हैं, रजोगुणी मध्य में रहते हैं और तमोगुणी नीचे चले जाते हैं।

(१९) जो गुण ही को कर्ता मानता है और गुण से आत्मा को अलग जानता है सो मेरे भाव को प्राप्त होता है।

(२०) जो देह धारी अपने देह से उपजे हुये तीनों गुणों को जीत लेता है और जन्म मरन बुढापे के दुख से रहित हो जाता है सो अमर पदवी को पाता है।

(२१) अर्जुन ने पूंछा कि हे भगवान जो पुरुष तीनों गुणोंसे रहित होता है उसका क्या लक्षण है और क्या आचार है ।

(२२) भगवान बोले हे अर्जुन ज्ञान प्रवृति मोह ये तीनों गुणों के कार्य्य हैं ऐसा जान कर जो प्रवृत्ति और निवृति की इच्छा नहीं रखता उसको त्रिगुणातीत समझो ।

(२३) जो उदासीन रहता है और गुणों से चलायमान नहीं होता बल्कि गुणोंके प्रवृत होने से अपनी प्रवृत नहीं समझता उसको गुणों से क्या संबन्ध है ।

(२४) जो सुख दुख में एकसा रहता है, सोना और मट्टी को बराबर समझता है, प्रिय अप्रिय वस्तु को, निन्दा स्तुत को, तुल्य जानताहै सो गुणातीत है ।

(२५) जो मान अपमान को, शत्रु मित्र को बराबर समझताहै और शुभाशुभ कर्मोंके आरंभ को त्याग किया है जिसने सो गुणातीत है ।

(२६) जो केवल मेरी भक्ति करता है सो भक्ति के बल से तीनों गुणों को नांघ जाता है और ब्रह्म को प्राप्त होता है ।

(२७) निर्विकार अविनाशी ब्रह्म की मूर्ति मैं ही हूं और सनातन धर्म और अखंड सुख की भी मूर्ति मैं ही हूँ ।

पुरुषोत्तम योगनाम पंदरहवां अध्याय

(१) श्रीभगवान बोले यह संसार वृक्षवत है जड इसकी ऊपर है शाखा नीचे है इस में विकार नहीं होता वेद इसके पत्ते हैं जो इस वृक्ष को जानता है सो ही वेद को जानता है।

(२) इस की शाखायें नीचे और ऊपर जो फैल रही हैं सो तीनों गुण रूपी रस से पुष्ट हैं विषय रूपी पत्ते नीचे को लह लहा रहे हैं और इस का मनुष्यों का कर्म है।

(३) इस वृक्ष का रूप भली प्रकार नहीं देखाई पड़ता है न आदि

न मध्य न अन्त ही इसका देखने में आता है पर जड़ बड़ी मजबूत है इस वृक्ष से अलग रहना तब यह कटेगा।

(४) तब उस पद को ढूंढना चाहिये कि जिस में जाने से फिर न आना पड़े इस लिये मैं उस आदि पुरुष के शरण होता हूं कि जिसने इस अनादि सृष्टि को फैलाया है।

(५) जो मान अपमान नहीं चाहते और निर्मोही हैं और धन व स्त्री के पास बैठने से मनको नहीं चलायमान होने देतेहैं आत्म ज्ञान में सदा तत्पर कामना रहित न सुख की चाहना न दुःख से भागना ऐसे पुरुष निर्विकार पद में जाते हैं।

(६) जहां सूर्य चन्द्रमा अग्नि प्रकाश नहीं कर सकता और जहां जाकर फिर कोई नही लौटता वही मेरा असल घर है।

(७) जीव हमारा अंश है इसको इन्द्रियां और मन अपने अपने विषय की ओर खींचती हैं।

(८) यह जीव जो ईश्वर है सो जब एक शरीर को छोड कर दूसरे शरीर में जाता है तब अपने साथ इन्द्रियों को लेजाता है जैसे वायु गन्ध को लेजाता है।

(९) आंख कान नाक जीभ त्वचा और मन इन छै इन्द्रियों की सहायता से यह जीव विषय को भोगता है।

(१०) मूढ लोग इस जीव को एक शरीर से दूसरे शरीर में जाते हुए, और देह में रहते हुए, विषयों को भोगते हुए, इन्द्रियोंके साथ रहते हुए नहीं देख सकते केवल ज्ञानी लोग देखते हैं।

(११) योगी लोग अपने देह में आत्मा को चेतन करने से देखते हैं परन्तु मूर्ख, मलीन अंतःकरण वाले चेतन करने से भी नहीं देख सकते हैं।

(१२) सूर्य में जो समस्त जगत को प्रकाश करता है और चन्द्रमा में अग्नि में जो तेज है सो मेरा ही तेज है।

(१३) पृथ्वी में प्रवेश कर के बलसे मैं ही सब जीवोंको धारण करताहूं और अमृत बरसाने वाला चन्द्रमा होकर औषधियोंको मैंही पुष्ट करताहूं।

(१४) प्राणियों के देह में जठराग्नि होकर पंच प्राणों के साथ मिलकर चार प्रकार के अन्न को मैं ही पचाता हूं।

(१५) सब के हृदय में मैं ही बैठा हूं मुझ ही से स्मरण ज्ञान और

भूल जाना होता है, सब वेदों कर के मैं हीजानने योग्य हूं, वेदांत का बनाने वाला और वेदों का जानने वाला मैं ही हूं।

(१६) जीव और ईश्वर ये दो पुरुष संसार में प्रसिद्ध हैं इसमें से जीव का नाश होता है और ईश्वर जो अन्तःकरण में रहता है तिसका नाश नहीं होता है।

(१७) उत्तम पुरुष तो न्यारा ही है, परमात्मा उसको कहते हैं जो निर्विकार ईश्वर होकर जगत में प्रवेश कर जगत को धारण करता है।

(१८) जीव जो नाशवान है और ईश्वर जो अविनाशी है तिससे भी मैं उत्तम हूं और सब से परे हूं इसलिये लोक और वेद में हमको पुरुषोत्तम कहा है।

(१९) हे अर्जुन जो ज्ञानी मुझको पुरुषोत्तम जानताहै वही सब कुछ जानता है और वही मुझको सब भाव से भजता है।

(२०) हे अर्जुन यह अत्यन्त गुप्त बात मैंने तुमसे कही इसको बुद्धिमान लोग जानकर निहाल होजाते हैं।

देवासुरसम्पत्तियोगोनाम सोलहवां अध्याय।

(१) भगवानने कहा निडर होना, अन्तःकरण शुचि रखना, ज्ञान में स्थित रहना, दान करना, इन्द्रिय निग्रह करना, यज्ञ करना, वेद शास्त्र का पढ़ना, तप करना, नम्रता होना।

(२) अहिंसा अर्थात जीवों को दुख न देना, सत्य बोलना, क्रोध नहीं करना, त्याग करना, शान्ति करना, निन्दा न करना, जीवोंपर दया करना, नीचों की खुशामद नहीं करना, कोमलता, लज्जा रखना, चालाकी नहीं करना।

(३) तेज, क्षमा, धीर्य, पवित्रता किसीकी बुराई नहीं करना, बहुत मान नहीं चाहना ये सब दैवी सम्पत्ति हैं, अर्थात जिन मनुष्यों में ये गुण हों तिनको देवता समझना चाहिये।

(४) दंभ याने अपने में कोई गुण न हो तो भी अपने को बड़ा समझना, दर्प अर्थात अपने में जो गुण हो तिसका घमंड, अभिमान याने अपने एसा किसी को न समझना, क्रोध, कठोरता, अज्ञान, यह

आसुरी सम्पत्ति हैं अर्थात जिस मनुष्य में ऐसे गुण हों तिसको राक्षस जानो।

(५) दैवी सम्पत्ति मोक्ष पद्के वास्ते और आसुरी बंधन के लिये है, अर्जुन तुम सोच मत करो क्योंकि तुम दैवी सम्पत्तिके सन्मुख जन्मेहो।

(६) इस जगत में दो प्रकार की सृष्टि है, एक दैवी दूसरी आसुरी, देवतों का लक्षण तो हमने तुमसे बहुत कहा अब असुरों का सुनो।

(७) प्रवृति और निवृति को असुर नहीं जानता है, पवित्रता से भी नहीं रहता है, और न उसमें आचार है, न सत्य को जानता है।

(८) असुर लोग इस जगत को ईश्वर का बनाया हुआ नहीं कहते हैं, इसको झूठ समझते हैं, इसकी प्रतिष्ठा नहीं करते हैं, केवल स्त्रीपुरुषके

संयोग से दुनिया की पैदाइश मानते हैं, इसका हेतु कामदेव को समझते हैं ।

(९) मलीन चित्त वाले, अल्प बुद्धिवाले, और अच्छे कर्म के नहीं करने वाले धर्म के बैरी होते हैं और वे ऐसी बातों को धारण किये जगत को नाश करने के वास्ते जन्म लेते हैं ।

(१०) दम्भ, और मान और मदसे युक्त और ऐसी कामना कि जो जल्दी पूरी नहीं हो और मोह बस जो काम नहीं होसके सो करते हैं ।

(११) वे प्रमाण हैं और मरने पर्यंत चिन्ता है याने कहते हैं कि आप मरे प्रलयहुई, खाना पीना चैन करना और भोगबिलास करना यही मुख्य है ऐसे को राक्षस कहते हैं ।

(१२) सैकड़ों आशाओं में बंधे हैं काम क्रोध के परायण है अन्याय

करके धन जमा करते हैं और जो कुछ करते हैं सो भोग विलास के लिये करते हैं।

(१३) अब यह धन हाथ लगा और वह धन भी हाथ लगेगा यही मेरा मनोरथ है, यह धन तो मेरा है, ये है और वह भी होगा।

(१४) इस शत्रु को तो मैंने मारा अब उस को भी मारूंगा मैं सब से जबरदस्त हूं, भोगी हूं, सिद्ध हूं, बलवान हूं।

(१५) मैं धनवान साहूकार हूं, कुलीन हूं, मेरे बराबर दूसरा कौन हैं, एक यज्ञ करुंगा तिसमें खूब खर्च करूंगा अज्ञान से मोहित होकर ऐसा कहता है।

(१६) जिनके चित्त में आशा तृष्णा बहुत है, भवजाल में फसे हैं, भोग विलास में लिप्त हैं, और नापाक रहते हैं, वे जरूर नरक में पड़ेंगे।

(१७) अपने को बड़ा समझता है, किसी महात्मा को देख कर नम्र नहीं होता है ,धनके सबब से जो मान होता है तिस के मद से मता रहता है और घमंड से नाम के वास्ते यज्ञ करता है।

(१८) अहंकार, बल,घमंड,काम, क्रोधके आश्रय किये हुये अपने देह और दूसरे के देह में जो मैं हूं तिससे द्वेष करते हैं और निन्दा करते हैं।

(१९) इस संसार में जो अधम नर हैं, क्रूर स्वभाव वाले हैं, और साधु महात्माओं से द्वेष रखते हैं तिनको मैं सदा के लिये आसुरी अशुभ योनि में फेंकूंगा।

(२०) मूढ लोग जो आसुरी योनि में जांयगे और जब जब आसुरी योनि में जन्म लेंगे और मेरे को नहीं प्राप्त कर सकेंगे तिस लिये और भी अधम गति को जांयगे ।

(२१) काम, क्रोध, लोभ, ये तीनों नरकके दरवाजे हैं और आत्मा को नाश करने वाले हैं तिसलिये इन तीनों को त्यागो ।

(२२) हे अर्जुन जब इन तीनों नरक द्वारका त्याग कर आत्मा को कल्यान वास्ते चैतन्य करता है तब परम गति पाता है ।

(२३) जो शास्त्र विधिको छोड कर मनमाना चलताहै सो नसिद्धि का लोभ करता है न सुखको और न परम गति को पाताहै ।

(२४) इसलिये शास्त्र के अनुसार चलना चाहिये और जो कर्म शास्त्र निन्दित हो तिसको त्याग कर शास्त्रोक्त कर्म करो।

त्रिगुणविभागयोगोनाम सत्रहवां अध्याय।

---

(१) अर्जुन ने पूछा कि हे भगवान जो लोग शास्त्र विधि को छोड़ कर अपनी श्रद्धा पूर्वक आपकी आराधना करतेहैं तिन की श्रद्धा सात्विकीया राजसी या तामसी कहलाती है वह क्या कहलाती है सो कृपा करके कहिये।

(२) भगवान ने कहा इस जीव की स्वभाविक श्रद्धा तीन प्रकार की है सात्विकी, राजसी, और तामसी, तिस को मैं कहता हूं सुनो।

(३) हे अर्जुन सब आदमियोंकी श्रद्धा अपने अन्तःकरण के अनुसार होती है जिसकी जैसी श्रद्धाहोतीहैं वह उसी श्रद्धावाला कहलाताहै।

(४) सात्विकी श्रद्धा वाले देवता को पूजते हैं और राजसी श्रद्धा वाले यक्ष राक्षसों को पूजते हैं और तामसों वाले भूत प्रेत को पूजतेहैं।

(५) जो जन शास्त्र विधि को छोड़ कर मलीन तप करते हैं वे घमण्डी होतेहैं और अहंकारी कामी रागी और बली होते हैं।

(६) अज्ञानी लोग शरीर में स्थित जो इन्द्रियां है तिन को दुख देते हैं और मैं जो शरीर में हूं सो मुझको भी क्लेश देते हैं तिन को असुर जानो।

(७) आहार भी सब का तीन प्रकार का होता है वैसे ही यज्ञ तप

दान भी तीन तीन प्रकार के होतेहैं तिसका भेद मैं कहता हूं सो सुनो।

(८) आयु, चित्तकी स्थिरता, वीर्य्य उत्तमसाहसबल, आरोग्यता, सुख प्रीति, इनका वढाने वाला जो पदार्थ और रस युक्त, चिकना, और चित्त को प्रसन्न करने वाला आहार सात्विकी लोगों को प्रिय होता है।

(९) कडुआ, खट्टा, नमकीन, रूखा, जलन करने वाला, और दुख शोक, रोग का देने वाला जो अहार है सो राजसी है।

(१०) बहुत देर का बना हुआ ठंढा सूखा दुर्गन्ध वाला बासी जूठा और अभक्ष अहार तामसी है वह तमोगुण वाले को भाता है।

(११) फल की इच्छा को त्याग कर जो विधि पूर्वक यज्ञ करता है इस ख्याल से कि यज्ञ करना जरूरी है ऐसे यज्ञ को सात्विकी यज्ञ कहते हैं।

(१२) हे अर्जुन फल को हृदय में रख कर लोगोंको देखानेके वास्ते जो यज्ञ करता है सो राजसी यज्ञ कहलाता है ।

(१३) विधि हीन,मन्त्र हीन, दक्षिणा हीन, न अन्नअच्छा, न दान, न श्रद्धा, ऐसा यज्ञ होता है सो तामसी यज्ञ कहलाता है ।

(१४) देवता, गुरु ब्राह्मण, महात्मा का पूजन करना, पवित्रता से रहना, नम्रता, अहिंसा, ब्रह्मचर्य्यसे रहना, और हिंसा न करना, इसको शरीर का तप कहते हैं ।

(१५) जिस बात से किसी को बुरा न मालूम हो, सत्य हो, प्रिय हो, लोगों की हितकारक हो सो वानी का तप कहा जाता है और शास्त्र का पठन पाठन भी बानी, का तप कहलाता है ।

(१६) मन प्रसन्न रहना, सतोगुन वृत्ति, मौन, रहना इन्द्रिय निग्रह, शुद्ध भाव को मानसिक तप कहते हैं।

(१७) फल की इच्छा को त्याग कर बडे श्रद्धा से जो किया जाता है सो सात्विकी तप कहलाता है।

(१८) जो तप घमंड से मान बडाई के वास्ते किया जाता है सो राजसी कहा जाता है।

(१९) जोतप मूर्खता से आत्मा को क्लेश देने वाला है और जो दूसरे का नाश करने वाला है सो तामसी है।

(२०) जब दान देना हो तो देश काल और पात्र देख कर देना

चाहिये याने अच्छे पुरुषों को अच्छे समय में अच्छे स्थान में दान देना सात्विकी दान है।

(२१) जो दान का बदला लेता है या बदला लेने की नियत रखता है और क्लेश से दान करता है याने खुशी से नहीं देता है सो राजसी दान है।

(२२) जो दान कुपात्रों को दिया जाता है और कुदेशमें कुसमय में और असत्कार के साथ और अज्ञानता के साथ के दान को तामसी दान कहते हैं।

(२३) ॐ तत्सत् यह ब्रह्म का उच्चारन तीन बेर कहा है और यही मंत्र वेद ब्राह्मण और यज्ञ को पहले ही पवित्र करता है।

(२४) ॐ यह नाम उच्चारन करके यज्ञ, दान तप, रूप क्रिया शास्त्र की रीति से सदा ब्रह्म ज्ञानी लोग किया करते हैं।

(२५) मोक्ष की इच्छा वाले तत् यह नाम उचारन करके फल का चिंतवन नहीं करके दान, यज्ञ, तप, रूप क्रिया नाना विधि करते हैं।

(२६) हे अर्जुन सद्भाव में और साधु भाव में और सत् को उचारन करते हैं और अच्छे कर्म में भी यह सत् मंत्र उच्चारन होता है।

(२७) यज्ञ में, तपमें, दान में, जो स्थिति उसको सत् कहते हैं और ईश्वरार्थ कर्म को भी सत कहते हैं।

(२८) अश्रद्धासे जो यज्ञ दानतप किया जाताहे उसको असत्कहतेहैं हे अर्जुन उसका फल न इसलोक में होता है और न पर लोक में होताहै॥

मोक्ष सन्यास योगोनाम अठारहवां अध्याय ।

(१) अर्जुन ने कहा कि हे इन्द्रियों के ईश और केशी दैत्य के मारने वाले ! सन्यास और त्यागमें क्या अंतर है सो पृथक पृथक कहिये ।

(२) कोई पंडित तो सब काम कर्म के त्याग को सन्यास कहते हैं और कोई सब कर्म के फलके त्याग को सन्यास कहते हैं।

(३) कोई पंडित कर्म को दोष रूप समझ कर त्यागने कहतेहैं और कोई यज्ञदान तप रूप कर्म को नहीं त्भागना कहते हैं ।

(४) हे अर्जुन त्याग के विषय में निश्चय करके हम से सुनो यह त्याग तीन प्रकार का कहा गया है ।

(५) यज्ञ, दान, तप पंडितों को पवित्र करने वालाहै इस लिये यज्ञ, दान, तप को त्यागना नहीं चाहिये बल्कि करना चाहिये ।

(६) हे अर्जुन ये यज्ञ दान तप मद में लिप्त होकर नहीं करना और न फल के वास्ते इनको करना यह मेरा उत्तम मत है ।

(७) नित्य कर्म को त्यागना नहीं चाहिये, मोह से कर्म का त्याग तमोगुणी त्याग कहलाता है ।

(८) जो कर्म शरीर के क्लेश के भय से त्यागा जाता है कि कर्म करने में दुख होगा ऐसे त्याग को राजसी त्याग कहते है ।

(९) हे अर्जुन जो प्रमाण युक्त जरूरी काम है उस का संग और फल का त्याग करने को सात्विकी त्याग कहते हैं ।

(१०) जो न बुरे काम से बैर रखता है और न अच्छे काम से प्रीत रखता है ऐसे सात्विक त्याग से बुद्धि बढती है और संशय दूर होता है,

(११) देहाभिमानी सब कर्म को त्यागने की सामर्थ नहीं रखता है इस लिये फल ही का त्याग त्याग कहलाता है ।

(१२) प्राणी के मरने के बाद तीन प्रकार का कर्म फल होताहै, एक स्वर्ग, दूसरा नरक, तीसरा मनुष्यका शरीर, परन्तु यह फल संन्यासी को नहीं होता है ।

(१३) हे अर्जुन सब कर्मों की सिद्धी के पांच कारण सांख्य शास्त्र में कहे हैं तिस को तुम सुनो ।

(१४) शरीर, अहंकार, मन, इन्द्रिय और इन्द्रियों का देवता यही पांच है इन के साथ मिला हुआ चैतन्य कर्ता है जो पृथक और अकर्ता है।

(१५) मनुष्य मनसा, वाचा, कर्मना से जो अच्छा या बुरा कर्म करता है उसके यही पांच हेतु हैं।

(१६) जब ऐसा है तब जो केवल आत्मा को कर्ता मानता है सो अज्ञानी है और दुर्बुद्धि है।

(१७) जो कर्म का कर्ता अपने को नहीं मानता है और जिस की बुद्धि लेपायमान नहीं होती वह इन लोगों को मारने से भी नहीं मारता है।

(१८) ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, ये तीनों कर्म के प्रेरक हैं और कर्ता कर्म कारण ये तीनों कर्म संग्रह है।

(१९) कर्ता, कर्म, ज्ञान, गुणके भेद से सांख्यशास्त्रमें तीन प्रकार के कहे हैं तिसको हमसे तुम यथार्थ सुनो।

(२०) पृथक पृथक सब जीवों में एकही अविनाशी ईश्वर को जिस ज्ञान से जाना जाता है सो ज्ञान सात्विकी है।

(२१) पृथक पृथक सब जीवों में पृथक पृथक आत्मा समझना इसको रजोगुण ज्ञान कहते हैं।

(२२) जो एकही बात को पकड़ लेता है और उसी को सब कुछ समझता है विना कारण और विना बिचार के उसको तामसी ज्ञान वाला कहते हैं।

(२३) जो कर्म बिना फल की इच्छा के और बिना वैरप्रीत के असंग होकर जरूरी समझ कर किया जाता है उसको सात्विकी कहते हैं।

(२४) जो कर्म फल के वास्ते अहंकार के साथ बड़ी मेहनत से किया जाता है उसको राजसी कहते हैं।

(२५) जिस में यह खियाल नहीं कि पीछे क्या होगा और अधिक द्रव्य का खरच करना जीवों का मारना और अधिक पुरुषार्थ करना उसको तामसी कर्म कहते है।

(२६) संगरहित, अहंकार रहित, धीर्य उत्साह के साथ कार्य की सिद्धि असिद्धि का कुछ खयाल नहीं ऐसे कर्ता को सात्विकी कर्ता कहते हैं।

(२७) कर्म करने में बड़ी प्रीति और फल की बहुत खोज, अपना फायदा देखना और दूसरे को तकलीफ देना, अपवित्र रहना, हर्ष शोक के साथ जो करता है सो रजोगुणी करता है ।

(२८) काम करने में चित्त नहीं रखना, विवेकरहित और यह नहीं खयाल की इसका फल क्या होगा और शठ और ऐसा काम कि जिस से सब कोई बदनाम करै, आलसी अप्रसन्न और काम में देरकर देना ऐसे को तामसी कर्ता कहते हैं ।

(२९) हे अर्जुन बुद्धि और धीरज गुण के प्रभाव से तीन तीन प्रकार के हैं सो हमसे सुनो ।

(३०) जो बुद्धि प्रवृत्ति और निवृत्ति, कार्य्य और अकार्य, भय और अभय, बंधन और मोक्ष को जानता है उसकी सात्विकी बुद्धि है।

(३१) जो धर्म और अधर्म कार्य और अकार्य को ठीक से नहीं जानता है उसकी राजसी बुद्धि है।

(३२) जो बुद्धि तमोगुण से ढकी हुई है जिससे अधर्म ही को धर्म समझा है और सबको विपरीत समझता है सो बुद्धि तमो गुणी है।

(३३) हे अर्जुन जिस धीर्य करके मन प्राण और इन्द्रिय की क्रिया को धारण करता है सो धीर्य सतोगुणी है।

(३४) जिस धीर्य करके धर्म और मनोरथ का फल प्राप्त होता है सो राजसी धीर्य है।

(३५) हे अर्जुन जो दुर्बुद्धि वाला स्वप्न, भय, शोक, विषाद, मद को धीर्य करके नहीं त्याग सकता है सो धीर्य तमोगुणी है।

(३६) हे अर्जुन अब तुम हमसे तीन प्रकार का सुख सुनो जिस के अभ्यास से दुःख का नाश होगा।

(३७) जो आदि में विष के समान प्रतीत होता है और अंतमें अमृत के तुल्य है सो सात्विकी सुख है।

(३८) जो इन्द्रिया और उनके विषय के संयोग से आदि में अमृत के समान मालूम होता है और अंत में विष होजाताहै सोराजसी सुखहै।

(३९) जो सुख निद्रा आलस में होता है और खेलतमासा लडाई में जो सुख होताहै और जो सुख आत्मा को मोह लेता हैं सोसुख तामसीहै।

(४०) पृथ्वी में स्वर्ग में और देवतों में जो पदार्थ हैं सो सब तीनों गुण वाली जो प्रकृति है उसी से उपजे हैं।

(४१) हे अर्जुन ब्राह्मण क्षत्री वैश्य और शूद्रों के जो कर्म हैं सो गुण ही के प्रभाव से पृथक पृथक हैं।

(४२) मन का रोकना, इन्द्रियों का रोकना, तप करना, पवित्रता से रहना, शांति, नम्रता, ज्ञान, विज्ञान, आस्तिकता, ये नौ कर्म स्वाभाविक ब्राह्मण के हैं।

(४३) शूरता, तेज, धैर्य, चतुरता, युद्ध से नहीं भागना, दान और ईश्वर भाव, ये सात क्षत्रियों के स्वाभाविक कर्म हैं।

(४४) खेती, गौ का पालना, और वाणिज्य, ये तीन वैश्य के कर्म हैं और शूद्र का स्वाभाविक कर्म सेवा करने का है।

(४५) अपने अपने कर्म में प्रीति करने वाला मनुष्य जिसतरह सिद्धि को प्राप्त करताहै सो सुनो।

(४६) जिस्से जीवों की प्रवृति हो रही है और जिससे यह जगत व्याप्त हो रहा है तिस ईश्वर की आराधना करने से प्राणी सिद्धि को पाता है।

(४७) पराये के सुन्दर धर्म से अपना धर्म श्रेष्ट है और स्वाभाविक नियत कर्म करने से पाप नहीं होता है।

(४८) हे कुन्ती पुत्र स्वाभाविक कर्म दूषित भी हो तो नहीं त्याग करना चाहिये क्योंकि सब ही कर्म दूषित हैं जैसे अग्नि में धुआं।

(४९,) सब कर्म करे परन्तु किसी कर्म में आसक्त नही हो मन को जीतना और किसी बात की इच्छा नही रखने से सन्यास के बल में परम निष्कामता प्राप्त होती है।

(५०) जिस तरह सिद्धि प्राप्त करके पुरुष ब्रह्मको प्राप्त करता है और जो ज्ञान की उत्तम निष्ठा है सो हमसे सुनो।

(५१) सतोगुणी बुद्धि और धैर्य कर के युक्त और आत्माको नियम में रखना शब्दादि विषयों और राग द्वेष को त्याग कर के ब्रह्म को प्राप्त होता है।

(५२) एकान्त सेवी हो, थोड़ा भोजन करना, पवित्र शरीर मनको जीतना और ध्यान योग वैराग्य की नित्य उपासना करना।

(५३) अहंकार, बल, गर्व, काम, क्रोध, को त्याग कर ममता रहित शांत चित्त होने से प्राणी ब्रह्म को प्राप्त करता है।

(५४) ब्रह्मभुत होजाना, मन प्रसन्न रखना, न शोचना, न कांक्षा रखना, और सब जीवों में समभाव रखने से मेरी पूरी भक्ति मिलती है।

(५५) वास्तव मैं जैसा और जो मैं हूं वैसा मुझको भक्ति से जान कर मुझही में समाजाता है।

(५६) सदा सब कर्मों को मेरा आसरा लेकर करता हूं तभी मेरे प्रसाद से निर्विकार अक्षयपद को प्राप्त करता है।

(५७) मेराही आशा भरोसा करता हुआ चित्त से सब कर्मों को त्याग करके विचार पूर्वक सदा मेरे में चित्त को लगाये रहो।

(५८) मेरे में चित्त लगाने से मेरे प्रसाद से तू सब दुर्गमों को तर जायगा और जो अहंकार से मेरा कहना नहीं मानेगा तो नाश भी हो जायगा।

(५९) जिस अहंकार का आसरा करके तू यह मानता है के मैं नहीं युद्ध करूंगा सो निश्चै तेरा झूठा है, तेरा स्वभाव तुझ से युद्ध करावेगा।

(६०) हे अर्जुन जो तू अपने कर्म में स्वाभाविक बंधा है तिसको तू नहीं करने की इच्छा करता है परन्तु वही कर्म मोह में पड़कर विवश होकर करेगा।

(६१) हे अर्जुन सब जीवों के हृदयदेश में ईश्वर विराजते हैं और अपनी माया से सब को भरमाते हैं जैसे हिंडोले पर चढ़ा हुआ आदमी भरमता है।

(६२) उस ईश्वर की सब भाव से तुम शरण होजाव तब तुम उनके प्रसाद से परम शांति को पाओगे।

(६३) यह ज्ञान जो मैंने तुझसे कहा सो गुप्त से भी गुप्त कहा इस समस्त को बिचार करके जैसी इच्छा हो तैसा करो।

(६४) अब मैं तुझ से और अत्यन्त गुप्त बिषय कहता हूं सो सुन क्योंकि तू मेरा प्यारा हैं इसलिये तेरे भलाई के वास्ते कहता हूं।

(६५) मेरे में मन को लगा, मेरी भक्ति कर, मेरा पूजन कर, मुझको नमस्कार कर, तो तू मुझको पावेगा इस मेरे प्रतिज्ञा को तू सत्य जान।

(६६) सब धर्मों को परित्याग करके तू मेरे शरण में चला आ; मैं ही तेरे सब पापों को धोदूंगा इसमें तू किसी बात का संदेह मत कर।

(६७) यह मेरा उपदेश जो तपस्वी नहीं हो उसको नहीं देना और जो भक्त नहीं हो उसको भी नहीं देना और जो टहल नहीं करता हो उसको भी नहीं देना और जो मेरी निन्दा करता है उसको भी नहीं देना।

(६८) यह परम गुप्त उपदेश जो मेरे भक्त को धारन करावेगा मेरी पराभक्ति को पाकर मेरेही में प्राप्त होगा।

(६९) और इस पृथ्वी के ऊपर मनुष्यों में उससे बढकर कोई मुझको प्रसन्न करनेवाला न है और न होगा।

(७०) जो मेरे और तुह्मारे इस धर्म संवाद को पढ़ेगा सो ज्ञान यज्ञ से मुझको प्रसन्न करेगा।

(७१) जो नर निन्दा रहित होकर श्रद्धा से इसको सुनेगा सो भी सब झगडों से छूट कर पुण्यात्मा लोगों के स्थान को प्राप्त करेगा।

(७२) हे अर्जुन तुमने इसको चित्त लगाकर कुछ सुना कि नहीं और तुम्हारा मोह गया कि नहीं सो कहो।

(७३) अर्जुन ने कहा हे अच्युत आप के प्रसाद से मेरा मोह नष्ट हुआ और अपने स्वरूप का ज्ञान हुआ और संदेह सब जाता रहा अब मैं आप के बचन अवश्य करूंगा।

(७४) संजय धृतराष्ट्र से कहते हैं कि यह श्रीकृष्ण भगवान और अर्जुन का संवाद जो वडा अद्भुत है और रोम रोम को हर्ष देनेवाला है सो मैनें सुनाया।

(७५) हे राजन् यह परम गुप्तयोग साक्षात् योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र जी महाराज के मुखारविन्द से व्यासजी की कृपा से मैंने सुना।

(७६) हे राजन् यह केशव भगवान और अर्जुन का पुण्यरूप अद्भुत संवाद स्मरण करके मैं बारंबार आनन्द को प्राप्त होता हूं।

(७७) हे राजन् भगवान के अद्भुत रूप को स्मरण करके मैं बड़े विस्मय को प्राप्त होता हूं और बारंबार प्रसन्न भी होता हूं।

(७८) हे राजन् जहां योगेश्वर श्रीकृष्णभगवान है, जहां धनुषधारी अर्जुन है तहांहीं लक्ष्मी है तहांहीं विजय और तहांहीं न्याय है ऐसा मेरा निश्चय है।

॥ इति भगवद्गीता सम्पूर्णम् ॥